इकाई–III

राजनीतिक विचारधाराएँ

1. उदारवाद (Liberalism)

उदारवाद स्थायी मूल्यों की अनिश्चित उपलब्धि है। यह यूरोपीय इतिहास और दर्शन दोनों की महत्त्वपूर्ण विरासत है। यह वास्तव में पुनर्जागरण की देन है। उदारवाद वह विचारधारा है जिसके अन्तर्गत मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानते हुए सामाजिक संस्थाओं को मनुष्यों की सूझबूझ और सामूहिक प्रयास समझा जाता है। जॉन लॉक को उदारवाद का जनक माना जाता है। एडम स्मिथ और जेरेमी बेंथम भी उदारवादी विचारकों मे गिने जाते हैं। उदारवाद राजनीतिक सिद्धान्त की एक प्रबल विचारधारा है। वस्तुतः आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं में से उदारवाद की परम्परा सर्वाधिक प्राचीन है। उदारवादी दर्शन का उदय तथा विकास यूरोप में पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलनों से जुड़ा है। 16वी शताब्दी में सामन्तशाही, राजशाही और पोपशाही जैसी मध्ययुगीन व्यवस्था के विरुद्ध एक प्रबल प्रतिक्रिया स्वरूप क्रान्तिकारी विचारधारा के रूप में उदारवाद का आगमन हुआ। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1815 में इग्लैण्ड में हुआ था।

1.1 उदारवाद की व्युत्पत्ति (Literal Meaning of Liberalism) –

उदारवाद अंग्रेजी के लिबरेलिज्म (Liberalism) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। इसकी व्युत्पति लैटिन भाषा के 'लिबर' (liber) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है स्वतंत्र। उदारवाद एक ऐसी अस्पष्ट, बौद्धिक, गतिशील यथा स्थितिवादी, पूँजीवादी व्यवस्था की समर्थक, गरीब विरोधी, अन्यायी, अनैतिक, अमानवीय अवधारणा थी। यह ऐसी विचारधारा का नाम है जिसका स्वरूप एवं कार्यक्षेत्र विकास के प्रथम चरण से लेकर वर्तमान तक बदलता रहा है, कभी यह पूँजीपतियों के पक्ष में प्रत्यक्ष रूप से सामने आता था, तो बाद में यह दबी जुबान में पूँजीपतियों के हित की बात भी करता। बाद में मार्क्सवाद के डर से पूँजीपतियों को बचाने के लिए यह गरीबों के हितों की बात करने लगा। उदारवाद लोककल्याण की अवधारणा का प्रबल समर्थक बन गया। 1990 के दशक में जब सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था ध्वस्त होने के बाद वह पुनः अपने परम्परागत स्वरूप की तरफ बढ़ चला है। पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलनों ने इसे जन्म दिया, औद्योगीकरण ने इसे आधार प्रदान किया। बढ़ते पूँजीवाद ने इसे स्वतंत्रता के निकट ला खड़ा किया, व्यक्ति के प्रति इस विचारधारा की आस्था ने राज्य को सीमित रूप दिया। सामान्यतया उदारवाद एक विचारधारा से अधिक है। यह सोचने का एक तरीका है, संसार को देखने की एक दृष्टि है तथा राजनीति को उदारवाद की ओर बनाए रखने का एक प्रयास है।

1.2 उदारवाद का उदय एवं विकास (Origin & Evolution of Liberalism) –

लॉक, बैंथम व एडम स्मिथ की रचनाओं में उदारवाद की झलक मिलती है। तब इसका रूप नकारात्मक था और इसे व्यक्तिवाद व शास्त्रीय उदारवाद के रूप में जाना जाता था। 19वीं शताब्दी में जॉन स्टुअर्ट मिल ने इसे सकारात्मक रूप प्रदान किया। तब राज्य को आवश्यक बुराई समझने की बजाय एक सकारात्मक अच्छाई समझा जाने लगा तथा अनियंत्रित वैयक्तिक स्वतंत्रता की व्यवस्था के लिए खतरा समझते हुए व्यक्ति की गतिविधियों पर उचित प्रतिबन्ध लगाए जाने लगे। 20वीं शताब्दी में लास्की और मेकाइवर ने इसे नये रूप में पेश किया व अब राज्य एक अच्छी तथा आवश्यक संस्था मानी जाने लगी और कानून व्यक्ति की स्वतंत्रता का रक्षक समझा जाने लगा।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मार्क्सवाद की बढ़ती लोकप्रियता से भयभीत होकर पुनः व्यक्ति की स्वायत्तता की ओर झुकता हुआ राज्य के कार्यों को सीमित करने का समर्थन करने लगा। उदारवाद व्यक्ति प्रेमी विचारधारा है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों पर बल देती है। यह राज्य को साधन और व्यक्ति को साध्य मानता है। यह रूढ़िवादिता व परम्परावाद के स्थान पर सभी क्षेत्रों में सुधारों व उदारीकरण का पक्ष लेता है। संविधानवाद, विधि का शासन, विकेन्द्रीकरण, स्वतंत्र चुनाव व न्याय व्यवस्था, लोकतांत्रिक प्रणाली, अधिकारों स्वतंत्रताओं व न्याय की व्यवस्था आदि उदारवादी विचारधारा के कुछ अन्य लक्षण है।

1.3 उदारवाद की प्रकृति (Nature of Liberalism) –

उदारवाद के प्रकृति उसके उदय व विकास के चरणों से जुड़ी हुई है। 1688 की गौरवपूर्ण अंग्रेजी क्रान्ति ने शासकों के दैवी सिद्धान्तों का तिरस्कार कर राज्य को एक मानवीय संस्था बताने का प्रयत्न किया था। उदारवाद व्यक्ति से जुड़ी विचारधारा है। 1789 की फांसिसी क्रान्ति ने पश्चिमी समाज को स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व के विचार देकर मध्ययुगीन निरंकुश शासन को त्याग दिया था। उदारवाद स्वतंत्रता से जुड़ी विचारधारा है। अमेरीकी स्वतंत्रता संग्राम तथा बाद के अमेरीकी संविधान ने व्यक्ति के अधिकारों की आवाज उठायी थी। उदारवाद व्यक्तियों के अधिकारों से जुड़ी विचारधारा है। उदारवाद निरंकुशवाद के विरुद्ध संविधानवाद पर बल देता है। माण्टेस्क्यू ने शासन–कार्यों को अलग–अलग संस्थाओं को देकर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त प्रतिस्थापित किया था।

उदारवाद सीमित कार्यों को करने वाले सीमित शक्तियों वाले राज्य की बात करता है। जॉन लॉक की धारणा थी कि राजनीतिक कार्य सीमित होते हैं अतः राजनीतिक शक्ति भी सीमित होनी चाहिए।

एडम स्मिथ व बैंथम अहस्तक्षेपी राज्य के समर्थक थे। राज्य आवश्यक तो है, परन्तु वह एक अनिवार्य बुराई है। पुनर्जागरण ने राज्य को ईश्वर–कृत छोड़ मानवकृत संस्था बना दिया।

1.4 उदारवाद के दो रूप (Forms of Liberalism)–

1. परम्परागत या शास्त्रीय उदारवाद
2. आधुनिक उदारवाद

1. **परम्परागत या शास्त्रीय उदारवाद (Traditional or Classical Liberalism) –** परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त धर्म को व्यक्ति का आन्तरिक और निजी मामला मानता है। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल देता है। सीमित राज्य के अस्तित्व को स्वीकार कर उसका समर्थन करता है। सामाजिक प्रतिमान में एकता की बात करता है। कालांतर में उदारवाद एक क्रान्तिकारी विचारधारा न होकर एक वर्ग विशेष (पूँजीवादी) की विचारधारा बन जाती है। यह रूप निजी सम्पति का समर्थन करता है। इसके कारण मानवीय जीवन में असमानता का आगमन शुरु हो जाता है। उदारवाद अब पूँजीवाद का पर्याय बन जाता है। इसी उदारवाद समर्थित पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध में वैज्ञानिक मार्क्सवादी क्रान्ति की शुरुआत होती है। मानवीय जीवन में असमानता को मिटाकर समानता लाने के लिए संघर्ष की बात मार्क्स करता है। जिसके फलस्वरूप उदारवाद अपना स्वरूप बदल देता है।
2. **आधुनिक उदारवाद (Modern Liberalism)–** यह सिद्धान्त लोक कल्याण कारी राज्य का समर्थन करता है। निजी सम्पति पर अंकुश लगाने व पूँजीपतियों पर कर की वकालात की जाती है।

लॉक के पश्चात् बेंथम, टॉमस पेन, मॉण्टेस्क्यू तथा कई विचारकों ने उदारवादी दर्शन को आगे बढ़ाया, उन्होंने न केवल शक्ति, विवेकशीलता, तर्कशीलता, और योग्यता पर पक्का विश्वास अभिव्यक्त किया, बल्कि व्यक्ति के कार्यों में शासन हस्तक्षेप न करे इस पर भी जोर दिया। उदारवादी दर्शन के फलस्वरूप ही ' अमेरीका की स्वतंत्रता की घोषणा 1776 व फ्राँस में 1779 ई में मानव अधिकारों की घोषणा हुई।

17वीं व 18वीं शताब्दी के उदारवाद को परम्परागत या शास्त्रीय या उदान्त उदारवाद भी कहा जाता है। यह उदारवाद नकारात्मक चरित्र का था। इस उदारवाद को मानव प्रतिष्ठा, तर्कशीलता, स्वतंत्रता तथा मानव के व्यक्तिवाद पर बल देने के बावजूद इसका मौलिक चरित्र नकारात्मक था। इस दृष्टिकोण में स्वतंत्रता को बंधनों का अभाव माना गया और पूँजीवादी वर्ग के लिए आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार कर लिया गया। जो राज्य कम से कम कार्य करे वहीं सर्वोत्तम है। आर्थिक क्षेत्र में इसने सम्पति के अधिकार एवं मुक्त व्यापार का समर्थन किया।

1.5 नकारात्मक उदारवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Negative Liberalism)

1. व्यक्तिवाद पर अत्यधिक बल
2. मानव की मध्ययुग की धार्मिक तथा सांस्कृतिक जंजीरों से मुक्ति पर बल।
3. मानव व्यक्तित्व के असीम मूल्य तथा व्यक्तियों की आध्यात्मिक समानता में विश्वास।
4. व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा में विश्वास।
5. मानव की विवेकशीलता और अच्छाई, मानव की मानवता के लिए कुछ प्राकृतिक अदेय अधिकारों, जीवन, स्वतंत्रता तथा सम्पति में विश्वास पर बल।

1.6 उदारवाद व लॉक का दर्शन (Liberalism & Philosophy of Locke) –

राजनीतिक आधार पर समझौता सिद्धान्त और उदारवाद दोनों जॉन लॉक के दर्शन है। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार है–

1. राज्य की उत्पति व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए सामाजिक समझौते के द्वारा हुई।
2. राज्य एवं व्यक्ति दोनों के सम्बन्ध आपसी समझौते पर आधारित है जब कभी भी राज्य समझौते की आवश्यक शर्तों का उल्लंघन करेगा तो व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार है।
3. कानूनों का आधार विवेक है न कि आदेश।
4. वहीं सरकार सर्वश्रेष्ठ है, जो कम से कम शासन करें।
5. राज्य एक आवश्यक बुराई है।
6. मानव को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्त हो।
7. स्वतंत्रता से तात्पर्य सभी सत्ताओं से मुक्ति या नकारात्मक स्वतंत्रता माना गया जो बंधनों का अभाव है।

सामाजिक आधार पर उदारवाद समाज को एक कृत्रिम संस्था मानता है। जिसका उद्देश्य व्यक्ति के हितों को पूरा करना था। समाज का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि था। व्यक्ति के हित के द्वारा समाज के हित को सम्भव बनाया गया। आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद मुक्त व्यापार तथा समझौते पर आधारित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की बात करता है। इसे नकारात्मक उदारवाद इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि यह स्वरूप राज्य में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार के हस्तक्षेप तथा नियंत्रण पर प्रतिबंध लगाता है।

1.6 नकारात्मक उदारवाद की आलोचना (Criticism of Negative Liberalism)–

1. सामाजिक क्षेत्र में उदारवाद का अत्यधिक खुलापन नैतिकता के विरुद्ध है।
2. सीमित राज्य, जन कल्याण विरोधी अवधारणा है।
3. उदारवाद का आर्थिक समाज '' बाजारु समाज है जो केवल बुर्जुआ वर्ग के हितों का ध्यान रखता है, सामान्य व्यक्ति के हितों की अनदेखी करता है।''
4. सांस्कृतिक क्षेत्र में नकारात्मक उदारवाद व्यक्ति को उच्छृँखल बनाती है जो समाज के हितों के विपरीत है।

1.7 आधुनिक व समसामयिक उदारवाद (Modern & Contemporary Liberalism)–

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परिवर्तित आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में उदारवाद में भी व्यापक बदलाव आया। मार्क्सवाद व समाजवाद के डर से उदारवाद में सुधार कर सकारात्मक धारणा का जन्म हुआ।

यह उदारवाद निम्नलिखित बातों पर बल देता है –

1. कल्याणकारी राज्य की स्थापना पर बल।
2. व्यक्ति को सभी क्षेत्रों में सम्पूर्ण स्वतंत्रता देकर सर्वांगीण विकास पर बल।
3. सभी व्यक्तियों को समान अवसर व अधिकार प्रदान करने पर बल।
4. व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर बल।
5. जनता के विकास तथा उसकी वैज्ञानिक प्रगति की धारणा में विश्वास।
6. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, निष्पक्ष चुनाव व व्यापक राजनीतिक सहभागिता पर बल।
7. राज्य, सामाजिक हित की पूर्ति का सकारात्मक साधन।
8. समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता व वर्गगत असंतोष कम करने पर बल।
9. लोकतांत्रिक समाज की राजनीतिक संस्कृति पर बल।
10. उदारवाद का यह स्वरूप क्रान्तिकारी तरीकों के विपरीत सुधारवादी, शान्तिपूर्ण और क्रमिक सामाजिक परिवर्तन में विश्वास रखता है।
11. यह स्वरूप अल्पसंख्यकों, वृद्धों व दलितों के विशेष हितों के सम्वर्द्धन करने पर बल।
12. आधुनिक उदारवाद ' बाजार व्यवस्था ' के स्थान पर मिश्रित एवं नियंत्रित अर्थव्यवस्था पर बल।
13. सामूहिक हित पर बल।
14. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को लचीला बनाने व नियंत्रित अर्थव्यवस्था के उद्देश्यों पर बल।
15. लोकतंत्र की समस्याओं पर नये ढंग से विचार करने पर बल।

1.8 आलोचना –

1. उदारवाद का यह स्वरूप भी बुर्जुआ वर्ग का ही दर्शन है। यह मूलतः पूँजीवादी तथा यथास्थितिवादिता पर बल देता है।
2. यह स्वरूप गरीबों की क्रान्तिकारी आवाज को दबाने का प्रपंच है।
3. यह राज्य को शक्तिशाली बनाने पर बल देता है ताकि गरीबों को राजनीतिक वैधता के नाम पर दबा सके।
4. यह पूँजीवादी वर्ग से सम्बन्धित धारणा है।
5. इसका सामाजिक न्याय मात्र ढकोसला है।
6. यह स्वतंत्रता के लिए आवश्यक सामाजिक परिस्थितियों का बनाया जाना राज्य पर छोड़ता है व पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त नहीं करता।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- उदारवाद पुनर्जागरण तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन का शिशु है।
- उदारवाद का 16वीं व 17वीं शताब्दी में सूत्रपात हुआ।
- लिबरेलिज्म की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द ' लीबर ' से हुई है, जिसका अर्थ स्वतंत्रता होता है।
- उदारवाद का जन्म बाजार अर्थ व्यवस्था को पनपाने के लिए हुआ।
- उदारवाद अपने आप में एक दर्शन है।
- यह शासन की एक विधि तथा नीति के रूप में स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्ध धारणा है।
- यह मानवीय बुद्धि तथा विवेक में आस्था पर बल देता है।
- यह व्यक्ति के स्वहित और सामान्य हित को एक समान मानता है।
- यह अन्धविश्वासों, रुढिवादियों तथा परम्पराओं का विरोध करता है।
- उदारवाद के प्रभाव स्वरूप ही इंग्लैण्ड, अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों का शंखनाद हुआ।
- उदारवाद स्वतंत्रता पर बल देता है व व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधन मानता है।
- यह लोकतंत्र, लोकप्रिय प्रभुसत्ता, निर्वाचित सरकार, वयस्क मताधिकार, निष्पक्ष चुनाव तथा स्वतंत्र न्यायपालिका में आस्था प्रकट करता है।
- उदारवाद धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना व धार्मिक स्वतंत्रता पर बल देता है।
- जॉन लॉक उदारवाद के जनक माने जाते हैं।

  आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद व्यक्ति को उत्पादन, विनिमय तथा वितरण करने, कोई भी व्यापार व व्यवसाय करने, सम्पति संग्रह करने तथा विनियमित करने पर बल देता है।

  उदारवाद अहस्तक्षेप नीति का समर्थन करता है।

- हरबर्ट स्पेन्सर ने न्यूनतम शासन व सीमित राज्य पर बल दिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. सकारात्मक उदारवाद इनमें से किसमें आस्था नहीं रखता है –
   (अ) सीमित राज्य (ब) नैतिक माध्यम के रूप में राज्य
   (स) कल्याणकारी राज्य(द) सूक्ष्म राज्य ( )
2. 'उदारवाद' शब्द का सबसे पहले प्रयोग कब और कहाँ हुआ था –
   (अ) 1815 में इंग्लैण्ड में
   (ब) 1776 में संयुक्त राज्य अमेरीका
   (स) 1917 में सोवियत संघ में
   (द) 1885 में जर्मनी में ( )
3. निम्नलिखित में से कौनसा वक्तव्य गलत है –
   (अ) 'उदारवाद' पद स्वाधीन व्यक्तियों के उस वर्ग को सन्दर्भित करता है जो न तो कृषक है और न ही दास है।
   (ब) 'उदारवाद' शब्द का प्रथम प्रयोग 1812 में स्पेन में हुआ।
   (स) शास्त्रीय उदारवाद तथा आधुनिक उदारवाद में भिन्नता है।
   (द) बाजार–विरोधियों की नैतिक कमियाँ बाजार–समर्थकों की भी नैतिक कमियाँ है। ( )
4. निम्नलिखित में से कौनसी उदारवाद की देन है –
   (अ) पूँजीवाद (ब) साम्यवाद
   (स) गाँधीवाद (द) संविधानवाद ( )
5. समकालीन समाज में शक्तिशाली विचारधारा नहीं है –
   (अ) समाजवाद (ब) साम्यवाद
   (स) राजतंत्रवाद (द) उदारवाद ( )
6. निम्न में से कौनसा विचारक उदारवाद का समर्थक नहीं है –
   (अ) कार्ल मार्क्स(ब) जॉन लॉक
   (स) जेरेमी बेंथम (द) स्पेंसर ( )
7. परम्परागत उदारवाद एक राजनीतिक सिद्धान्त था जिसने –
   (अ) पूँजीवाद का समर्थन किया
   (ब) समाज में सामाजिक असमानता को समाप्त करने की बात की
   (स) निरंकुश राजतंत्रों का समर्थन किया
   (द) सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का समर्थन किया। ( )
8. उदारवाद का जनक किस विचारक को माना जाता है–
   (अ) जॉन लॉक (ब) रिकार्डो
   (स) एडम स्मिथ (द) हाब्स ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. उदारवाद की आर्थिक क्षेत्र में प्रमुख मांग क्या थी ?
2. उदारवाद की राजनीतिक क्षेत्र में प्रमुख मांग क्या थी ?
3. उदारवाद की सामाजिक क्षेत्र में प्रमुख मांग क्या थी ?
4. उदारवाद की उत्पति किस प्रकार हुई ?
5. उदारवाद के प्रमुख विचारक कौन–कौन है ?
6. नकारात्मक उदारवाद से क्या अभिप्रायः है ?
7. सकारात्मक उदारवाद से क्या तात्पर्य है ?
8. परम्परागत उदारवाद का अर्थ बताइए ?
9. आधुनिक उदारवाद के प्रवर्तक कौन–कौन है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. उदारवादी विचारधारा के राजनीतिक उद्देश्यों को बताइए।
2. परम्परागत उदारवाद के पाँच गुण बताइए।
3. "उदारवाद मार्क्सवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है।" समझाइये।
4. आधुनिक उदारवाद परम्परागत उदारवाद से किस प्रकार भिन्न है? उल्लेख कीजिये।
5. उदारवाद ने लोककल्याण कारी राज्य की अवधारणा को स्थापित करने में किस प्रकार सहायता की।
6. उदारवाद की आलोचना के मुख्य बिन्दु क्या–क्या है।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. परम्परागत व आधुनिक उदारवाद की समीक्षात्मक तुलना कीजिए।
2. "उदारवाद मूलतः पूँजीवाद का पोषण करने वाली विचारधारा है।" स्पष्ट कीजिए।
3. उदारवाद के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब	2. अ	3. ब	4. ब
5. स	6. अ	7. अ	8. अ

2. समाजवाद (Socialism)

समाजवाद, आधुनिक राजनीतिक युग में दोनों ही विपरीत विचारधाराओं मार्क्सवाद और कल्याणकारी उदारवाद का प्रमुख उद्देश्य रहा है। समाजवाद जो की पाश्चात्य चिंतन में 19वी और 20वी शताब्दी में विकसित हुआ, को सामान्यतः पूँजीवाद के विपरीत विचारधारा माना जाता है। तत्पश्चात् समाजवादी विचारधारा समस्त विश्व में तेजी से लोकप्रिय होने लगी। समाजवाद का अर्थ शोषण से रहित समतामूलक समाज और राज्य की स्थापना करना है। भारत सहित अनेक लोकतांत्रिक देशों ने समाजवादी लक्ष्यों को सांविधानिक मान्यता प्रदान की है।

2.1 समाजवादी अवधारणा का विकास (Evolution of Socialism) –

प्राचीन काल में यूनान के स्टॉइक दर्शन ने आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय का सिद्धान्त दिया। मध्यकाल में थोमस मूर की प्रसिद्ध कृति यूटोपिया (1516) में एक आदर्श समाजवादी राज्य की परिकल्पना प्रस्तुत की गई। 17वीं शताब्दी में बेकन ने अपनी पुस्तक ''न्यू अटलांटिस'' में समाजवादी विचारों का उल्लेख किया। परन्तु समाजवाद की प्रगति की दिशा में फ्राँस की राज्य क्रान्ति (1789) एक मील का पत्थर साबित हुई जब क्रान्ति के ''ध्येय वाक्य'' में ''समानता स्वतंत्रता और बन्धुत्व'' को शामिल किया गया। इसी दौर में फ्राँस के बेबियफ ने समाजवादी सिद्धान्तों की वकालत की। बेबियफ के विचारों को बाद में ब्लैंकी ने प्रसारित किया। 19वीं शताब्दी में सन्त साईमन, चार्ल्स फूरियर, रॉबर्ट ओवन जैसे विचारकों ने पूँजीवाद के दोषों को मानवीय स्वचेतना के आधार पर दूर कर सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण की बात की। प्रूधों ने अपनी पुस्तक ''वॉट इज प्रोपर्टी'' (What is property) में निजी सम्पत्ति को चोरी की संज्ञा दी। राज्य को समाप्त करने की बात कहकर बेकुनिन तथा अन्य अराजकतावादियों ने एक नई समाजवादी परम्परा की शुरुआत कर दी। इसके पश्चात् समाजवाद की अनेक धाराएँ यथा फेबियनवाद, श्रेणी समाजवाद, श्रमिक संघवाद इत्यादि विकसित हुए। जॉर्ज बर्नाड शॉ, जी.डी.एच. कोल, जॉर्ज सोरेल जैसे विचारकों ने समाजवाद की उक्त धाराओं के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। 19वीं सदी में साम्यवाद व मार्क्सवादी समाजवाद का प्रादुर्भाव हुआ। इसका विधिवत् सैद्धान्तिक सूत्रपात 1848 में कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित पुस्तक "साम्यवादी घोषणा–पत्र'' के साथ हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति, जिसने शहरी श्रमिक वर्ग को जन्म दिया और समाजवादी क्रान्ति को सम्भव बनाया, सबसे पहले इंग्लैण्ड में हुई थी और इस कारण इंग्लैण्ड को समाजवादी विचारधारा का घर कहा जाता है। ब्रिटिश लोगों ने अपने स्वभाव और जीवन मूल्यों के अनुरूप ही समाजवाद के विचार को अपनाया गया। ईसाई धर्म के एक ग्रन्थ "बाइबल" या साम्यवाद के एक विचारक कार्ल मार्क्स या उनकी रचना 'साम्यवादी घोषणा पत्र' की भाँति समाजवाद का कोई एक विचारक या कोई एक ग्रन्थ प्रेरणा स्त्रोत के रूप में नहीं है। विलियम इबन्स्टीन के शब्दों में, "इंग्लैण्ड में अधिकांश वे प्रभावशाली समाजवादी विचारक रहे हैं, जिन्हें राजनीतिक दलों या शासन में कोई महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं थी। किन्तु उनका प्रभाव मुख्यतया उनकी नैतिक शक्ति और उनके लेखन की शैली के कारण था।"

जिन विचारकों ने समाजवाद की सामान्य व्याख्या की है उनमें आर.एच. टॉनी, रैम्जे मैकडोनल्ड, सिडनी और बेट्रिस वैब, हेरल्ड लॉस्की, क्लेमेण्ट एटली, डर्विन, अमेरीका में नार्मन थामस और भारत में पं. जवाहर लाल नेहरू, राममनोहर लोहिया और पं. दीनदयाल उपाध्याय का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

2.2 समाजवाद का आशय (Meaning of Socialism)–

समाजवाद एक आर्थिक सामाजिक दर्शन है। समाजवादी व्यवस्था में धन – सम्पत्ति का स्वामित्व व वितरण समाज के नियंत्रण के अधीन रहते हैं। समाजवाद प्रजातांत्रिक मार्ग को अपनाते हुए समतामूलक समाज की स्थापना पर बल देता है। राजनीतिक क्षेत्रों में इसकी आस्था मानवीय स्वतंत्रता पर आधारित उदारवादी दर्शन में है, लेकिन राज्य के कार्यक्षेत्र के संदर्भ में यह लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना पर बल देता है।

2.3 समाजवाद की परिभाषाऐं (Definitions of Socialism)–

बर्नार्ड शॉ के अनुसार ''समाजवाद का अभिप्राय सम्पत्ति के सभी आधारभूत साधनों पर नियंत्रण से है। यह नियंत्रण समाजवाद के किसी एक वर्ग द्वारा न होकर स्वयं समाज के द्वारा होगा और धीरे–धीरे व्यवस्थित ढंग से स्थापित किया जायेगा।''

"राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण तथा जन सहमति के तरीकों से न कि बल द्वारा स्थापित की जाने वाली न्यायपूर्ण व्यवस्था ही लोकतान्त्रिक समाजवाद है।" – जवाहर लाल नेहरू

"समाजवाद ने साम्यवाद के आर्थिक लक्ष्य (उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व, बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास) तथा पूँजीवाद के सामान्य लक्ष्यों (राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र तथा मानव अधिकार) को अपना लिया हैं प्रजातान्त्रिक समाजवाद का लक्ष्य दोनों में सामंजस्य स्थापित करना है।" – डॉ. राम मनोहर लाल लोहिया।

न्यायमूर्ति गजेन्द्र गड़कर के अनुसार – "प्रजातान्त्रिक समाजवाद लोक कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने की व्यवस्था है। इसका आधार उदारवादी सामाजिक

दर्शन है। इसकी मुख्य भावना यह है कि व्यक्ति को सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए।"

इस प्रकार समाजवाद का अर्थ है: लोकतान्त्रिक मार्ग को अपनाकर आर्थिक, सामाजिक न्याय की स्थापना, व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक न्याय की स्थापना करना।

2.4 भारत में समाजवाद का विकास (Evolution of Socialism in India) –

भारत में समाजवाद का प्रारम्भ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध किये जाने वाले राष्ट्रीय संघर्ष में ही हो गया था। सर्वप्रथम सन् 1929 के लाहौर अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की कार्य समिति ने घोषित किया था। ''भारत में ब्रिटिश शासन ने न केवल भारतीय लोगों को उनकी स्वतंत्रता से वंचित किया है बल्कि शासन का आधार ही लोगों का शोषण करना है जिसने भारत को आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक रूप से नष्ट कर दिया है। अतः भारत को हमेशा के लिए ब्रिटिश सम्बन्ध तोड़ने होंगे और पूर्ण स्वराज्य को प्राप्त करना होगा।''

इसी प्रकार सन् 1931 में कराँची अधिवेशन में काँग्रेस द्वारा पारित प्रसिद्ध प्रस्ताव के प्राक्कथन में कहा गया था, "यदि हम सर्वसाधारण के लिए स्वराज्य को वास्तविक स्वराज्य बनाना चाहते हैं तो इसका अर्थ केवल देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता से ही नहीं, वरन् सर्वसाधारण की आर्थिक स्वतन्त्रता से भी है।" गाँधीजी ने भारतीय आदर्शों और परिस्थितियों के अनुकूल समाजवाद का प्रतिपादन किया। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के काल में और बाद में पं. जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, मानवेन्द्र राय, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया आदि नेताओं ने समाजवादी विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में और मानव गरिमा की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अब तक केन्द्र के शासक दल और विपक्ष सभी के द्वारा अपने आपको समाजवाद का पक्षधर घोषित किया जाता रहा है, लेकिन व्यवहार में अब तक इस दिशा में जो कुछ किया गया है, वह निश्चत रूप से अपूर्ण माना जाएगा क्योंकि आर्थिक आधार पर समाज में खाई अब तक काफी बड़ी हो गई है।

2.5 समाजवाद के प्रमुख तत्त्व (The Main Elements of Socialism) –

समाजवाद के कुछ सामान्य लक्षण बताये जा सकते हैं, जो इस प्रकार है –

1. **पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों ही अतिवादी हैं** – प्रजातान्त्रिक समाजवाद, पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों विचाराधाराओं का समान रूप से विरोधी है। उसके अनुसार पूँजीवाद असमानता और सामान्य जनता के शोषण पर आधारित है और ऐसी व्यवस्था कभी भी समस्त जनता के कल्याण में नहीं हो सकती। इसके साथ ही साम्यवाद से उसका विरोध भी उतना ही आधारभूत है जितना कि पूँजीवाद से उसका विरोध। प्रजातान्त्रिक समाजवाद साम्यवाद का विरोध इसलिए करता है कि साम्यवाद, धर्म और नैतिकता के विरोध पर टिका हुआ है, वर्ग संघर्ष और हिंसक क्रान्ति की धारणा में विश्वास करता है और उसके अन्तर्गत अधिनायकवाद (सर्वहारावर्ग के अधिनायकवाद) को अपनाया गया हैं। प्रजातान्त्रिक समाजवाद के अनुसार वे ऐसे विचार हैं, जो कभी भी मानव जीवन के लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकते हैं। इसी कारण वह साम्यवाद को अपना प्रथम शत्रु मानता है और "नवीन साम्राज्यवाद का यन्त्र" कहकर उसकी भर्त्सना करता है। प्रजातान्त्रिक समाजवाद पूँजीवाद और साम्यवाद, इन दोनों का विरोध करते हुए आर्थिक और सामाजिक जीवन के क्षेत्र में एक नया मार्ग प्रशस्त करता है।

2. **जनतान्त्रिक व्यवस्था में विश्वास** – समाजवाद का यह सबसे प्रमुख लक्षण बताया जा सकता है कि वह सर्वसत्तावाद के सभी रूपों का घोर विरोधी है क्योंकि सर्वाधिकारवाद में मानवीय व्यक्तित्व, उसकी स्वतन्त्रता और गरिमा को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं होता। सर्वाधिकारवाद के विपरीत, यह समाजवाद का पूर्ण उपासक है और उसके द्वारा समाजवाद का मार्ग प्रजातन्त्र के पूरक रूप में ही अपनाया गया है। नार्मन थॉमस के शब्दों में "समाजवाद प्रजातन्त्र की ही पूर्ण सिद्धि है।" प्रजातान्त्रिक समाजवाद का यह दृढ़ विश्वास है कि आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में जो भी परिवर्तन किये जाने हों उनके लिए प्रजातान्त्रिक पद्धति को ही अपनाया जाना चाहिए।

3. **मानवता में विश्वास** – पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों विचारधाराओं के अन्तर्गत मानव को एक आर्थिक प्राणी माना गया है, किन्तु समाजवाद मानव को एक नैतिक प्राणी मानता है। पूँजीवाद इस गलत धारणा पर आधारित है कि व्यक्ति केवल लाभ या दण्ड के भय से ही क्रियाशील होता है, साम्यवादी मानते हैं कि हिंसा, भय या आतंक जैसे अमानवीय तत्वों के आधार पर ही कोई कार्य किया जा सकता है, किन्तु वस्तुतः मनुष्य एक भौतिक या आर्थिक प्राणी नहीं, वरन् एक नैतिक प्राणी है। यह केवल भौतिक विचारों से ही नहीं वरन् आदर्शों और आशाओं से प्रभावित होता है तथा सहयोग, सामाजिकता और भ्रातृत्व की भावनाओं के आधार पर कार्य करता है। समाजवाद मानवीय प्रकृति के सम्बन्ध में इसी आशावादी दृष्टिकोण को अपनाता है और मनुष्यों के नैतिक विकास पर बल देता है।
4. **आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों का समर्थक** – समाजवाद का विचार है कि समस्त सामाजिक व्यवस्था धर्म और नैतिकता पर टिकी हुई है और यदि इस आधार को मिटाने का प्रयत्न किया गया तो समस्त व्यवस्था ढह जायेगी। समाजवाद के अधिकांश प्रतिपादकों द्वारा

समाजवाद की प्रेरणा धर्म से ही प्राप्त की गयी है, लेकिन धर्म और नैतिकता से समाजवाद का आशय कर्मकाण्ड, भाग्यवाद या धार्मिक जीवन की अन्य कुप्रवृत्तियों को अपनाने से नहीं है अपितु मानवता को गरिमा देने से है। इसके साथ ही समाजवाद अपने आपको किसी एक विशेष धर्म से ही नहीं, वरन् सभी धर्मों में समान रूप से प्रतिपादित नैतिकता और आध्यात्मिकता के सामान्य सिद्धान्तों से ही सम्बद्ध करता है।

5. **वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग पर बल** – समाजवादी दर्शन में पूँजीपतियों और श्रमिकों की विद्यमानता को स्वीकार करते हुए भी वर्ग संघर्ष को नहीं मानता है। वर्ग संघर्ष की भावना दूषित और हिंसात्मक वातावरण को जन्म देती है और औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के बजाय गतिरोध का कारण बनती है। समाजवाद के अनुसार पूँजीपति और मजदूर वर्ग के हितों में एकता स्थापित की जा सकती है और समाजवाद का मूल मन्त्र वर्ग संघर्ष की अपेक्षा सामंजस्य और सहयोग पर आधारित है।

6. **आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता का पक्षधर** – साम्यवादी, आर्थिक स्वतन्त्रता को ही व्यक्तियों के लिए अति आवश्यक मानता है। उनके अनुसार काम का अधिकार, उचित पारिश्रमिक और अवकाश का अधिकार ही व्यक्तियों के लिए सब कुछ है। दूसरी ओर पूँजीवाद, नागरिकों की राजनीतिक स्वतन्त्रता पर बल देता है, लेकिन यहाँ आर्थिक स्वतन्त्रता के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया जाता। लेकिन समाजवादी व्यवस्था व्यक्ति के लिए विचार, भाषण, संगठन और सम्मेलन, आदि की राजनीतिक स्वतन्त्रताऐं तो आवश्यक मानता ही है साथ ही यह भी मानता है कि राजनीतिक और नागरिक स्वतन्त्रता के साथ–साथ आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।

7. **उत्पादन और वितरण पर जनतान्त्रिक नियन्त्रण** – पूँजीवादी व्यवस्था में सामान्य जनता को राजनीतिक प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय की शक्ति तो प्राप्त होती है, लेकिन सामान्य जनता को आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित करने की क्षमता नहीं होती है। समाजवाद इस व्यवस्था को दोषपूर्ण मानता है। उसकी धारणा है कि अर्थव्यवस्था पर जनतान्त्रिक सरकार का नियन्त्रण होना चाहिए अर्थात् सामान्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित संसद द्वारा अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण रखा जाना चाहिए। ब्रिटिश विचारक आर.एच.एस. क्रॉसमैन के शब्दों में, "समाजवाद के द्वारा उस समस्त सत्ता को चुनौती दी जानी चाहिए, चाहे वह किन्हीं भी हाथों में निहित हो जो अनुत्तरदायी या अर्द्ध–उत्तरदायी है। जिस प्रकार नगरपालिका की व्यापारिक एजेन्सियाँ नगरपालिका परिषद के प्रति उत्तरदायी होती हैं, उसी प्रकार से प्रत्येक राष्ट्रीयकृत उद्योग पूर्ण रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।"

8. **उत्पादन का लक्ष्य समाजीकरण** – समाजवाद के द्वारा प्रारम्भ में हर क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण पर अधिक बल दिया गया था, किन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि राष्ट्रीयकरण आर्थिक क्षेत्र की सभी समस्याओं का समाधान नहीं है। अतः संशोधित व्यवस्था में समाजवाद द्वारा राष्ट्रीयकरण के स्थान पर समाजीकरण पर बल दिया गया। राष्ट्रीयकरण का तात्पर्य उद्योगों पर सार्वजनिक स्वामित्व से है, लेकिन समाजीकरण का तात्पर्य यह है कि उद्योग चाहे सार्वजनिक क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में, उन पर नियन्त्रण की व्यवस्था राज्य के निर्देशानुसार होनी चाहिए और उनका संचालन लाभ प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् सामाजिक हितों की दृष्टि से किया जाना चाहिए। समाजीकरण इस धारणा पर आधारित है कि उद्योग के स्वामित्व से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उद्योग के संचालन के उद्देश्य का है।

9. **सम्पत्ति के असीमित संग्रह के विरुद्ध** – समाजवाद निजी सम्पत्ति को समाप्त करने के स्थान पर उसे सीमित करने का ही समर्थक है। समाजवाद के अनुसार जो सम्पत्ति शोषण को जन्म देती है, उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, बड़े–बड़े उद्योग–धन्धों पर अन्तिम नियन्त्रण राज्य का होना चाहिए, निजी पूँजीपतियों का नहीं, क्योंकि पूँजीपति इन उद्योग–धन्धों के आधार पर सामान्य जनता को अपना दास बना सकते हैं, लेकिन जो निजी सम्पत्ति समाज के लिए उपयोगी भूमिका अदा करती है उसे बनाये रखा जाना चाहिए अर्थात् निजी घर, जीवनोपयोगी निजी चीजें, कृषि, हस्तशिल्प, खुदरा व्यापार और मध्यम श्रेणी के उद्योगों को निजी क्षेत्र में बनाये रखा जा सकता है। समाजवाद निजी सम्पत्ति को पूर्णतया समाप्त करने की बात नहीं करता, लेकिन इस बात का अवश्य ध्यान रखता है कि निजी सम्पत्ति स्वयं राज्य को अपना दास न बना ले अर्थात् व्यक्ति के हाथ में असीमित पूँजी जमा न हो जाए।

10. **श्रेष्ठ मानव जीवन का लक्ष्य** – समाजवाद राज्य को एक बुराई या शोषण का एक यन्त्र न मानकर उसे सामाजिक सद्‌गुणों को विकसित करने वाली संस्था मानता है और इस बात का प्रतिपादन करता है कि राज्य का कार्यक्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होना चाहिए। सभी समाजवादी इस बात को स्वीकार करते हैं कि समाज की सामूहिक शक्ति ही शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, मनोरंजन और श्रेष्ठ सांस्कृतिक जीवन की सुविधाऐं जुटा सकती है। अतः राज्य के द्वारा अस्पतालों, शोध केन्द्रों, पार्कों और सार्वजनिक मार्गों की अधिकाधिक व्यवस्था की जानी चाहिए। संक्षेप में, राज्य के द्वारा मानव कल्याण

हेतु अधिकाधिक सम्भव कार्य किये जाने चाहिए।

2.6 समाज – समाजवाद का प्रमुख अवयव (Society - Main Components of Socialism) –

समाजवाद समाज को एक ऐसा तत्व मानता है, जिसका धीरे–धीरे विकास होना चाहिए और जिसमें विकास की प्रक्रिया द्वारा स्वयं को परिवर्तित करने की क्षमता होती है। समाजवाद केवल समाज के सभी वर्गों के सहयोग से विकास को बढ़ाना चाहता है। उनका विचार है कि समाजवाद न केवल श्रमिक वरन् समाज के सभी वर्गों के लिए हितकारी है और व्यक्तियों को उच्च आदर्शों तथा नैतिकता की अपील कर जनता के बहुत बड़े भाग को इसमें सम्मिलित किया जा सकता है। धैर्य, सावधानी और बुद्धिमता के साथ समाजवाद का प्रचार जनता को विकास के रास्ते पर ले जायेगा और क्रान्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। विचार और भाषण, प्रेस, मंच, साहित्य के प्रकाशन और अन्य प्रचार साधनों के आधार पर समाजवाद अपना विस्तार करता है। समाजवाद हमेशा ही वैधानिक साधनों से सत्ता प्राप्त करने में विश्वास करता है।

2.7 समाजवाद के प्रमुख तत्त्व (Main Elements of Socialism)

1. धनवानों की बढ़ती हुई आय पर आयकर लगाना जाना चाहिए और प्राप्त राशि का उपयोग निर्धनों के हित में किया जाना चाहिए।
2. कालेधन का संग्रहण हर हालत में रोका जाए।
3. कृषि भूमि पर जोतने वाले का अधिकार होना चाहिए।
4. उद्योगों एवम् बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था पर राज्य का प्रभावी नियन्त्रण हो।
5. निजी उद्योगों का राज्य द्वारा निर्देशन किया जाना चाहिए जिससे उनका संचालन सामाजिक हित की दृष्टि से हों।
6. आर्थिक असमानता तत्काल दूर की जानी चाहिए।
7. सभी व्यक्तियों के लिए उनकी योग्यता के अनुसार रोजगार, उचित पारिश्रमिक व अवकाश की व्यवस्था की जानी चाहिए।
8. राज्य के द्वारा अधिकाधिक कल्याणकारी सेवाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे नागरिक सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।
9. आर्थिक विकास हेतु नियोजन की पद्धति को अपनाया जाना चाहिए।

2.8 समाजवाद के गुण (Characteristics of Socialism)–

समाजवाद के अपने कुछ गुण हैं, जिन्होंने इसे आज विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय विचारधारा बना दिया है, पूँजीवाद और साम्यवाद जीवन की दो परस्पर नितान्त विरोधी विचारधाराएँ हैं और इन दोनों ने अतिवादी दर्शन को ग्रहण किया गया है। समाजवाद में पूँजीवाद और साम्यवाद इन दोनों ही व्यवस्थाओं के गुणों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया गया है। समाजवाद के प्रमुख गुण इस प्रकार बताये जा सकते हैं –

1. यह व्यक्ति और समाज दोनों के हितों का समान रूप से ध्यान रखता है।
2. यह पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों के ही दोषों से परिचित और अपने को उनसे दूर रखने के लिए प्रयत्नशील है।
3. समाजवाद व्यक्तियों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में विश्वास करता है और इस दृष्टि से अधिक–से–अधिक सम्भव सीमा तक व्यक्तियों को नागरिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है।
4. यह निजी सम्पत्ति की समाप्ति नहीं चाहता, वरन् सामाजिक हित में उसे केवल सीमित करने के पक्ष में है।
5. समाजवाद मानवीय जीवन को व्यवस्थित रखने में धर्म और नैतिकता के महत्त्व को स्वीकार करता है और सभी धर्मों के सार, मानव धर्म पर आधारित है।
6. यह आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का मार्ग अपनाता है।
7. सत्ता जनता द्वारा निर्वाचित संसद के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए।
8. यह समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में सहायक है।

2.9 समाजवाद के दोष (Defects of Socialism) –

समाजवाद को सबसे अधिक उपयोगी और व्यावहारिक विचारधारा बताया जाता है तो दूसरी ओर इसके आलोचकों की भी कमी नहीं है। इसके प्रमुख दोष निम्न प्रकार है –

1. **कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं** – समाजवाद में अस्पष्टता और अनिश्चितता है। उदाहरण के लिए, कुछ समाजवादी राष्ट्रीयकरण पर बल देते हैं तो कुछ अन्य समाजीकरण पर। निजी सम्पत्ति पर किस सीमा तक नियन्त्रण रखा जाए, इस सम्बन्ध में भी समाजवादियों में व्यापक मत भेद हैं।
2. **एक–दूसरे के विरोधी तत्वों को स्थान** –जनतन्त्र स्वतन्त्रता में विश्वास करता है जबकि समाजवाद नियन्त्रणों की व्यवस्था में। जनतन्त्र और समाजवाद के परस्पर विरोध के कारण समाजवादियों की विचारधारा में भी विरोधाभास है।
3. **प्राकृतिक सम्भावनाओं के विरुद्ध** – यह विचारधारा समानता की धारणा पर आधारित है, किन्तु प्रकृति की दृष्टि से मनुष्य समान नहीं वरन् उसमें शारीरिक शक्ति, बुद्धि और चरित्रबल का भेद होता है। ऐसी स्थिति में जिन व्यक्तियों ने अपनी योग्यता, परिश्रम और मितव्ययता के बल पर अन्य व्यक्तियों से अधिक सम्पत्ति अर्जित करली है, उन्हें अपनी इच्छानुसार सम्पत्ति के

प्रयोग का अधिकार भी प्राप्त होना चाहिए, लेकिन समाजवाद परिश्रमी और योग्य व्यक्तियों की सम्पत्ति आलसी और अकर्मण्य व्यक्तियों में बाँटना चाहता है।

4. **भ्रष्ट व्यवस्था को संरक्षण** – समाजवाद में राज्य की शक्तियाँ बहुत अधिक बढ़ जाती हैं और व्यवहार में राज्य की इन शक्तियों का प्रयोग नौकरशाही के द्वारा ही किया जायेगा। यह एक सर्वविदित बात है कि भाई भतीजावाद, भ्रष्टाचार और लालफीताशाही नौकरशाही की कार्यविधि के अनिवार्य अंग है।
5. **उपभोक्ताओं के हितों को नुकसान** – समाजवाद में उत्पादन पर राज्य का अधिकार स्थापित हो जाने से उपभोक्ता की सम्प्रभुता समाप्त हो जाती है। उपभोक्ता को अपनी आवश्यकताएं, जो कुछ उत्पादित हो चुका है उसके अनुसार ही पूरी करनी होंगी और इसके परिणामस्वरूप स्वाभाविक रूप से उनके हितों को नुकसान होगा।

निष्कर्ष (Conclusion) –

समाजवाद की उपर्युक्त प्रकार से आलोचनाऐं की जाती हैं, लेकिन इन सभी आलोचनाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि इन आलोचनाओं का सैद्धान्तिक दृष्टि से ही कुछ महत्त्व हो सकता है। जहाँ तक व्यवहार का सम्बन्ध है, हमारे सम्मुख प्रजातन्त्र के समान ही समाजवाद का कोई विकल्प नहीं है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- समाजवाद, लोकतांत्रिक मार्ग को अपनाकर आर्थिक, सामाजिक, न्याय की स्थापना तथा व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक न्याय की स्थापना करने वाली विचारधारा है।
- समाजवाद के प्रमुख तत्व –
  - पूँजीवाद व साम्यवाद दोनों ही अतिवादी है।
  - जनतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास।
  - मानवता में विश्वास।
  - आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों में विश्वास।
  - वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग पर बल।
  - आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता का पक्षधर।
  - उत्पादन व वितरण पर जनतांत्रिक नियंत्रण
  - उत्पादन का लक्ष्य समाजीकरण।
  - सम्पति के असीमित संग्रह के विरुद्ध।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारतीय समाजवादी विचारक कौनसी अवधारणा के पक्षधर है –
   (अ) मानव गरिमा की स्थापना।
   (ब) वर्ग संघर्ष।
   (स) असीमित धन संग्रह।
   (द) नैतिक मूल्यों में दूरी। ( )
2. समाजवादी विचारधारा का घर कौनसा देश कहलाता है –
   (अ) भारत (ब) सोवियत संघ
   (स) इंग्लैण्ड (द) अमेरीका ( )
3. "धनवानो की आय पर अतिरिक्त कर लगाना व इस राशि का उपयोग निर्धन कल्याण में करना" कौनसी विचारधारा का लक्ष्य है –
   (अ) पूँजीवादी (ब) समाजवादी
   (स) आतिवादी (द) व्यक्तिवादी ( )
4. इनमें से कौन समाजवादी विचारक नहीं है –
   (अ) राम मनोहर लौहिया (ब) सुभाष चंद्र बोस
   (स) लार्ड मैकाले (द) हेराल्ड लास्की ( )
5. भारतीय समाजवाद की गणना किस रूप में की जाती है –
   (अ) लोकतांत्रिक समाजवाद
   (ब) श्रेणी समाजवाद
   (स) साम्यवाद
   (द) धार्मिक समाजवाद ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. समाजवाद का आरम्भ कहाँ हुआ था?
2. समाजवाद का एक प्रमुख तत्व क्या है।
3. भ्रष्ट व्यवस्था कहाँ अधिक पनपने की सम्भावना है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत में समाजवाद का सबसे प्रमुख प्रतिपादक कौन–कौन हैं?
2. समाजवाद के चार प्रमुख सिद्धान्त बतलाइये।
3. समाजवाद के चार गुण बतलाइए।
4. समाजवाद के विरुद्ध चार तर्क दीजिए।
5. समाजवाद का आशय क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. समाजवाद से आप क्या समझते हैं?इसके गुण–दोषों पर प्रकाश डालिए।
2. समाजवाद के प्रमुख तत्त्व बताइए।
3. लोकतान्त्रिक समाजवाद के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों की उत्तरमाला

1. अ 2. स 3. ब 4. स 5. अ

3. मार्क्सवाद (Marxism)

मार्क्सवाद कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स तथा लेनिन माओ ग्राम्शी आदि के विचारों की व्यवस्थित श्रृंखला है। मार्क्स समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादक या सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन की बात कहने वाला प्रथम विचारक नहीं है। मार्क्स से पहले ब्रिटेन व फ्रॉस के विचारकों द्वारा समाजवादी विचार व्यक्त किये जा चुके थे। फ्रॉस में नायेल बावेफ, सेण्ट साइमन चार्ल्स फोरियर व लुई ब्लांक तथा इग्लैण्ड में जॉन डी सिलमेण्डी, डॉ. हॉल, थाम्पसन और राबर्ट ओवन थे। ये विचारक पूँजीवादी व्यवस्था में विद्यमान धन की विषमता, स्वतंत्र प्रतियोगिता और आर्थिक क्षेत्र में राज्य की नीति के कटु आलोचक थे। लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि विषमता किन कारणों से उत्पन्न होती है तथा न ही विषमता निवारण का घटना चक्र प्रस्तुत किया। मार्क्स ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन कर समाजवाद(साम्यवादी) की स्थापना हेतु विश्लेषण पर आधारित एक व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की।

3.1 मार्क्सवाद का अभिप्राय (Meaning of Marxism)

मार्क्सवाद वह विचारधारा है जिसका आधार मार्क्स एवं एंगेल्स के विचार है। 19वीं शताब्दी में जर्मनी में कार्ल मार्क्स (1818–1883) और फ्रेडरिक एंगेल्स नाम के दो महान विचारक हुए थे। इन दोनों ने मिलकर दर्शन, इतिहास, समाजशास्त्र, विज्ञान, अर्थशास्त्र की विविध समस्याओं पर अत्यन्त गम्भीर व विशद रूप से विवेचन करते हुए सभी समस्याओं के सम्बन्ध में एक सुनिश्चित विचारधारा और एक नवीन दृष्टिकोण विश्व के सामने रखा तथा इसी दृष्टिकोण व विचारधारा को विश्व में मार्क्सवाद के नाम से जाना जाता है। इस विचारधारा में एंगेल्स का योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा।

इस प्रकार से मार्क्सवाद का प्रमुख प्रतिपादक जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स है। उसने ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर समाजवाद का प्रतिपादन किया है। अतः इसे वैज्ञानिक समाजवादी कहा जाता है। मार्क्स के अतिरिक्त एंजिल्स, लेनिन, स्टालिन, कॉटसी रोजा लक्जमबर्ग, डॉहस्की, माओ, ग्राम्शी, जार्ज ल्यूकाज आदि इस विचारधारा के प्रमुख मार्क्सवादी है।

3.2 कार्ल मार्क्स – जीवन परिचय (Karl Marx – The Life Story)

क्रान्तिकारी तथा वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स का जन्म 1818 ई. में एक यहूदी परिवार में हुआ। इनके पिता हेनरिक मार्क्स जो पेशे से वकील थे। कार्ल जब छोटा बालक था तो इनके पिता ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में अध्ययन किया तथा यहाँ पर मार्क्स का परिचय हीगल के द्वन्दात्मक दर्शन से हुआ। मार्क्स विश्वविद्यालय का शिक्षक बनना चाहता था लेकिन नास्तिक विचारों के कारण ऐसा नहीं हो सका। 1841 ई में मार्क्स ने जेना विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की व 1843 में 25 वर्ष की आयु में जैनी से विवाह हुआ तथा 14 मार्च 1883 ई में मार्क्स का लन्दन में देहान्त हो गया इनकी फ्रेडरिक ऐन्जिल्स से मित्रता इतिहास प्रसिद्ध है।

3.3 मार्क्स के दर्शन के स्रोत (Sources of Marxism)

ऐबेन्सटीन के अनुसार " अपनी स्वयं की कष्टपूर्ण और लम्बी खोज में मार्क्स को अपना दर्शन किसी विचारक से बना बनाया तैयार नहीं मिला वरन् उसने उसे विभिन्न स्त्रोतों से एकत्र किया।"

गैटल ने लिखा है " मार्क्सवाद का मुख्य आधार ऐतिहासिक भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त है इन दोनों का हीगल के दर्शन से निकट का सम्बन्ध है। दूसरे यह मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर निर्भर है जिसका आधार इग्लैण्ड का अर्थशास्त्र है। तीसरे इसमें फ्रॉसीसी क्रान्ति व फ्रॉसीसी समाजवाद के तत्व भी सम्मिलित है इनसे उसने क्रान्ति के द्वारा प्रगति का सिद्धान्त और राज्य के विलीन होने की धारणा ग्रहण की।

1. **जर्मन विद्वानों का प्रभाव** – मार्क्स ने समाज के विकास के लिए हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति को अपनाया उन्होंने युवा हीगलवादी फायरबाख से भौतिकवाद का विचार लिया।
2. **ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों का चिन्तन** – मार्क्स ने ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों एडम स्मिथ व रिकार्डो आदि से श्रम के मुख्य सिद्धान्त को अपनाया इसी सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
3. **फ्रेंच समाजवादियों का चिन्तन** – फ्रॉस में सेण्टसाइमन, चार्ल्स फोरियर आदि चिन्तको ने समाजवाद का प्रतिपादन किया था। उसका स्वरूप यद्यपि काल्पनिक था तथापि वह अपने चरित्र से क्रान्तिकारी था। उत्पादन के साधनो पर स्वामित्व का सिद्धान्त श्रमिको का उत्पादन और उनका शोषण करने वाले वर्ग का विनाश का सिद्धान्त और वर्ग विहीन समाज की स्थापना का विचार आदि मार्क्स ने फ्रॉसीसी चिन्तन से प्राप्त किया।
4. **सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ** – तत्कालीन पूँजीवादी समाज के शोषणवादी चरित्र ने भी मार्क्स को क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया था।

संक्षेप में, मार्क्स ने चाहे ईंटों को बहुत से स्थानों से एकत्र

किया हो परन्तु उसने साम्यवाद का जो विशाल भवन बनाया वह सर्वथा मौलिक है। उसने सर्वहारा वर्ग को तार्किकता देकर महान गति और शक्ति प्रदान की। उसने समाजवाद (साम्यवाद) को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। इसी कारण उसे वैज्ञानिक समाजवाद का जनक कहते हैं। इसका वैज्ञानिक समाजवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त व अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त इन चार स्तम्भों पर आधारित है।

3.4 मार्क्सवाद की प्रमुख रचनाएँ (Works of Marxism)

1. द पावर्टी ऑफ फिलोसॉफी (1847) –मार्क्स
2. द इकोनॉमिक एण्ड फिलोसॉफिकल मेन्यूसिक्रिप्ट (1844) –मार्क्स
3. थीसीस ऑन फायरबाख –मार्क्स
4. क्लास स्ट्रगल इन फ्राँस –मार्क्स
5. द क्रिटिक ऑफ पॉलिटीकल इकोनॉमी –मार्क्स
6. वेल्यू, प्राइज एण्ड प्रॉफिट –मार्क्स
7. द कैपिटल (वोल्यूम I, II, III) (1894) –मार्क्स
8. द सिविल वार इन फ्रांस (1871) –मार्क्स
9. द गोथा प्रोग्राम –मार्क्स
10. 'द होली फैमिली (1875), जर्मन आइडिओ लॉजी, द कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो –मार्क्स एवं एंगेल्स
11. द ओरिजन ऑफ फेमिली. प्राइवेट प्रोर्पटी एवं द स्टेट – एंगेल्स
12. स्टेट एंड रेवोल्यूशन –लेनिन
13. ऑन कांन्ट्रेडिक्शंस –माओत्से तुंग
14. द प्रिजन नोट बुक्स –ग्राम्शी

3.5 मार्क्स की रचनाओं से सम्बन्धित कुछ तथ्य

1. The Capital (1867) में मार्क्स ने मूल आर्थिक नियमों का विश्लेषण किया।
2. The Capital (1867) का पूरा नाम – " The Critique of Political Economy" है।

   द कैपिटल का पहला खण्ड मार्क्स ने तथा बाकी दो खण्ड मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् एंगेल्स ने संपादित किए।
3. प्रूधों ने "The Philosophy of Poverty" (1847) नामक पुस्तक लिखी, जिसके जवाब में मार्क्स ने "The Poverty of Philosophy " (1847) नामक रचना लिखी इसमें मार्क्स ने वर्ग की सकारात्मक परिभाषा दी।
4. The Civil War in France (1871) में राज्य पर विचार दिया तथा इन्होंने The Communist Manifesto (1848) के विचारों को संशोधित किया।
5. The German Ideology (1845) में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त दिया।
6. टेलर ने मार्क्स की रचना "The Communist Manifesto" (1848) को बाइबिल या कुरान की भाँति पवित्र कहा।

3.6 मार्क्स के प्रमुख विचार अथवा मार्क्सवाद की मूल मान्यताएँ (Ideas of Marx & Foundations of Marxism)

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या
3. वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त
4. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त
5. मार्क्स का राज्य सिद्धान्त
6. प्रजातन्त्र, धर्म व राष्ट्र के सम्बन्ध में धारणा
7. मार्क्सवादी पद्धति, कार्यक्रम (क्रान्ति)

परन्तु मार्क्सवाद को जानने के तीन आधार है –

1. उत्पादन प्रणाली
2. उत्पादन के साधन
3. उत्पादन सम्बन्ध

उत्पादन प्रणाली से दो बातों का संकेत मिलता है –

(अ) उत्पादन के तरीके या तकनीकी स्वरूप क्या है जैसे की क्या वह हस्तशिल्प, कृषकीय या औद्योगिक तरीके से होता है।

(ब) उत्पादन किस तरह की समाज व्यवस्था के अन्तर्गत होता है ? अर्थात् क्या वह दास प्रथा वाली व्यवस्था में, पूँजीवादी या समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पन्न होता है।

उत्पादन की शक्तियों से भी दो बातों का संकेत मिलता है –

(अ) उत्पादन के साधन, उपकरण, यन्त्र इत्यादि क्या है ?

(ब) श्रम शक्ति अर्थात् उत्पादन करने वाले मनुष्यों के ज्ञान, अनुभव, निपुणता और क्षमताओं का स्तर क्या है?

उत्पादन सम्बन्धों से तात्पर्य है कि मनुष्य किन सम्बन्धों से बन्ध जाते हैं। ये सम्बन्ध इस बात पर निर्भर है कि कौनसा वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी है और इसलिए प्रभुत्वशाली वर्ग है और कौनसा वर्ग इनसे वंचित होने के कारण पराधीन वर्ग की स्थिति में है।

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) –

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त मार्क्स के सम्पूर्ण चिन्तन का मूलाधार है। यह सिद्धान्त भौतिकवाद की मान्यताओं को द्वन्द्वात्मक पद्धति के साथ मिलाकर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या देने का प्रयत्न करता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में मार्क्स के द्वन्द्ववाद का विचार हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति से ग्रहण किया और भौतिकवाद का दृष्टिकोण फायरबाख से। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में दो शब्द है– इनमें प्रथम शब्द द्वन्द्वात्मक उस प्रक्रिया को स्पष्ट करता है जिसके अनुसार सृष्टि का विकास हो रहा है और दूसरा शब्द भौतिकवाद सृष्टि के मूल तत्व को सूचित करता है।

2. **द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया (Dialectical Process)** – मार्क्स के विचार द्वन्द्वात्मक पद्धति पर आधारित है। हीगल यह मानकर चलता है कि समाज की प्रगति प्रत्यक्ष न होकर एक टेढ़े–मेढ़े तरीके से हुई है जिसके तीन अंग है वाद, प्रतिवाद, और संवाद मार्क्स की पद्धति का आधार हींगल का यही द्वन्द्ववादी दर्शन है।

मार्क्स तथा उसके अनुयायियों ने द्वन्द्वातमक प्रक्रिया को गेहूँ के पौधे के उदाहरण से समझाया है गेहूँ का दाना वाद है। भूमि में बो देने के बाद जब पौधा निकलता है तो दूसरा चरण प्रतिवाद है। तीसरा चरण पौधे में बाली का आना इसके पकने पर गेहूँ का दाना बनना तथा पौधे का सुखकर नष्ट होना यह तीसरा चरण संवाद है।

भौतिकवाद (Materialism) – जहाँ हीगल सृष्टि का मूल तत्व चेतना या विश्वात्मा को मानता है वहीं मार्क्स सृष्टि का मूल तत्व जड़ को मानता है।

3.7 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Dialectical Materialism) –

1. द्वन्द्ववाद के अनुसार विश्व स्वतंत्र है और यह असम्बद्ध वस्तुओं का ढेर या संग्रह मात्र नहीं है वरन् समग्र इकाई है जिसकी समस्त वस्तुएँ परस्पर निर्भर है।
2. द्वन्द्ववाद के अनुसार प्रकृति अस्थिर, गतिशील और निरन्तर परिवर्तनशील है।
3. द्वन्द्ववाद के अनुसार वस्तुओं में विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया सरल है।
4. वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन धीरे–धीरे न होकर शीघ्रता के साथ अचानक होते हैं
5. वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन क्यों होते हैं इसका उत्तर मार्क्स हीगल की विचारधारा के आधार पर ही देता है।
6. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्राकृतिक जगत की आर्थिक तत्वों के आधार पर व्याख्या करता है और पदार्थ को समस्त विश्व की नियन्त्रक शक्ति के रूप में।

3.8 द्वन्द्वात्मक विकास के नियम (Principles of Dialectical Evolution) –

1. **विपरीत की एकता और संघर्ष का नियम**
2. **परिमाण से गुण की ओर परिवर्तन** – मात्रा में भारी परिवर्तन से गुण में भी परिवर्तन हो जाता है जैसे जल गर्म होकर भाप में परिवर्तित हो जाता है।
3. **निषेध का निषेध नियम** – इस प्रक्रिया में कोई तत्व अपने विरोधी तत्व से टकराकर अपनी आरम्भिक अवस्था में नहीं आता है अपितु उच्च अवस्था में पहुँच जाता है।

अतः वाद प्रतिवाद के संघर्ष के फलस्वरूप बना संवाद नहीं है अपितु उच्च अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है।

3.9 ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) –

मार्क्सवाद के अन्तर्गत ऐतिहासिक भौतिकवाद को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के पूरक सिद्धान्त के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसे इतिहास की आर्थिक व्याख्या या इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या भी कहा जाता है। मार्क्सवादी विचारधारा में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की भाँति ही इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। मार्क्स की धारणा है कि मानव इतिहास में होने वाले विभिन्न परिवर्तन और घटनाएँ भौतिक व आर्थिक कारणों से होती है। अतः मार्क्स इस बात से सहमत नहीं है कि इतिहास कुछ विशेष व महान व्यक्तियों के कार्यों का परिणाम हैं।

मार्क्स ने मानव इतिहास के विकास पर आर्थिक कारणों का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए इतिहास को छः अवस्थाओं में विभाजित किया है। इसमें प्रथम तीन अवस्थाएँ गुजर चुकी है। चौथी अवस्था चल रही है दो अवस्थाएँ अभी आनी है।

1. आदिम साम्यवादी अवस्था
2. दास अवस्था
3. सामन्ती अवस्था
4. पूँजीवादी अवस्था
5. सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्त्व एवं समाजवाद
6. साम्यवादी अवस्था

मार्क्स के अनुसार समाज के दो भाग होते हैं–

1. आधार
2. अधिरचना

आधार में वह अर्थव्यवस्था व उत्पादन प्रणाली को सम्मिलित करता है अधिरचना में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक अवस्था को सम्मिलित करता है।

मार्क्स के अनुसार आधार अर्थात् अर्थव्यवस्था व प्रणाली पर जिसका नियन्त्रण होता है उसे शोषक वर्ग कहते हैं और जो वर्ग शोषक वर्ग के अधीन कार्य करता है उसे शोषित वर्ग कहते हैं।

3.10 इतिहास के आर्थिक व्याख्या के निष्कर्ष (The Deductions of Economic Analysis of History)–

1. मानव जीवन व सभ्यता का विकास ईश्वर या महापुरुष के विचारों व कार्यों का परिणाम नहीं होते हैं सामाजिक परिवर्तन के निश्चित नियम है और इस प्रक्रिया का

संचालक आर्थिक तत्व है।
2. प्रत्येक युग में सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था पर उसी का नियन्त्रण रहता है जिसका आर्थिक व्यवस्था पर नियन्त्रण होता है।
3. आर्थिक परिवर्तनों से राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तन होता है।
4. आदिम साम्यवाद को छोड़कर पूँजीवाद तक वर्ग संघर्ष विद्यमान रहता है।
5. इतिहास की आर्थिक व्याख्या से मार्क्स पूँजीवाद के अन्त व साम्यवाद के आगमन की घोषणा करता है।

3.11 इतिहास की आर्थिक व्याख्या की आलोचना (The Criticism of Economic Analysis of History)–

1. आर्थिक तत्व पर अधिक व अनावश्यक बल
2. आर्थिक आधार पर सभी ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या संभव नहीं
3. इतिहास निर्धारण में संयोग तत्व की उपेक्षा
4. मानवीय इतिहास के कार्यक्रम का निर्धारण संभव नहीं
5. राजनीतिक सत्ता का एकमात्र आधार आर्थिक सता नहीं
6. आर्थिक सम्बन्धों को राजनीतिक शक्ति द्वारा बदला जाता है।
7. इतिहास की धारणा का राज्य विहीन समाज पर आकर रुकना संभव नहीं।

3.12 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class Struggle) –

कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848) मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद व अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर आधारित है मार्क्स अपनी पुस्तक कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848) के प्रथम वाक्यांश में कहता है कि अब तक का समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।

एंगेल्स अपनी पुस्तक (Origin of Family Private Property & State) में लिखता है कि पहली शोषक संस्था परिवार है और पीड़ित वर्ग महिला है। एंगेल्स के अनुसार हल के साथ निजी सम्पति का उदय हुआ। निजी सम्पति के उद्भव के साथ वर्ग संघर्ष का उदय हुआ और वर्ग संघर्ष को दबाने के लिए राज्य का उदय हुआ।

वर्ग (Class) – मार्क्स के अनुसार जिस समूह के एक समान आर्थिक हित होते हैं उसे वर्ग कहते हैं। श्रमिक, पूँजीपति इत्यादि।

संघर्ष (Struggle) – संघर्ष का व्यापक अर्थ असन्तोष, रोष व असहयोग है।

3.13 वर्ग संघर्ष की आलोचना –

1. एकांगी व दोषपूर्ण।
2. सामाजिक जीवन का मूल तत्व सहयोग है संघर्ष नहीं।
3. समाज में केवल दो वर्ग ही नहीं होते हैं
4. सामाजिक व आर्थिक वर्ग में अन्तर होता हैं।
5. क्रान्ति श्रमिक वर्ग की बजाय बुद्धिजीवी वर्ग से सम्भव।
6. समस्त इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास नहीं।

मार्क्स के इस सिद्धान्त ने श्रमिक वर्ग में जागृति उत्पन्न की।

3.14 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) –

मार्क्स अपनी पुस्तक में रिकार्डो से प्रभावित होकर अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त देता है। रिकार्डो एक पूँजीपति विचारक है जो श्रम मूल्य का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। रिकार्डो का कहना था कि किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण श्रम द्वारा होता है।

मार्क्स के अनुसार बाजार में माल–परिचालन का सामान्य सूत्र C-M-C है अर्थात् एक वस्तु के साथ बाजार में आना, उसे बेचकर मुद्रा कमाना तथा मुद्रा से मनवांछित दूसरी वस्तु खरीदकर बाजार छोड़ देना। माल–उत्पादन की एक खास मंजिल पर मुद्रा पूंजी में बदल जाती है। पूंजी के परिचलन का सूत्र है M-C-M' अर्थात् पूंजीपति मुद्रा (M) के साथ बाजार में आता है, श्रम शक्ति नामक माल खरीद कर उससे ऐसा नया माल बनाता है जिसे बेचकर अधिक मुद्रा (M') कमा लेता है। इस M'-M को मार्क्स अतिरिक्त मूल्य कहता है जो परिचलन में डाली गई मुद्रा के आरम्भिक मूल्य में वृद्धि है। मुद्रा जब अतिरिक्त मूल्य का सृजन करने लगती है तो पूंजी बन जाती है। पूंजीपति निर्वाह मजदूरी पर मजदूर की पूरी श्रम शक्ति खरीद लेता है। इस तरह मजदूर अपनी निर्वाह मजदूरी यानि अपने विनिमय मूल्य के अतिरिक्त जो श्रम करने को बाध्य होता है, उससे पैदा होने वाला मूल्य अतिरिक्त मूल्य है। यह मजदूर को नहीं मिलता बल्कि सीधे पूंजीपति द्वारा हड़प लिया जाता है। उल्लेखनीय है कि अतिरिक्त मूल्य माल के विनिमय मूल्य में अन्तर्निहित होता है। बाजार में मांग–पूर्ति से तय होने वाली अल्पकालिक कीमत से पूंजीपति जो मुनाफा कमाता है, वह इसके अलावा है।

मार्क्स के अनुसार इस अतिरिक्त मूल्य के समाज पर निम्न प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं –

1. श्रमिकों की दयनीय दशा
2. सर्वहारा क्रान्ति का कारण
3. अतिरिक्त जनसंख्या का कारण

आलोचना –

1. श्रम एकमात्र उत्पादन का साधन नहीं।
2. इसमें पूँजी लागत मानसिक श्रम की अवहेलना की गई है।
3. इसमें मौलिकता का अभाव है यह रिकार्डो से प्रभावित है।
4. सिद्धान्त विरोधाभास से युक्त है।

महत्त्व – समाजवाद के प्रचार में सबसे अधिक सहायक रहा है।

3.15 अलगाव का सिद्धान्त (Theory of Aleivation) –

अलगाववादी विचार नव मार्क्सवाद या तरूण मार्क्स के विचार का आधार है। मार्क्स अपनी अपनी रचना मेन्यू स्क्रिप्ट 1844 में यह सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक में वह पूँजीवाद की तुलना में सामंतवाद को अच्छा बताता है। वह कहता है कि पूँजीवाद के कारण मनुष्य अलगाव का शिकार हो गया है। यह अलगाव निम्न चार प्रकार से देखा जा सकता है –

1. उत्पादन प्रणाली से अलगाव
2. पर्यावरण से अलगाव
3. साथियों से अलगाव
4. स्वयं से अलगाव

नव मार्क्सवाद भी इसी अलगाव के सिद्धान्त से प्रभावित है। यह जार्ज ल्यूकाज के द्वारा 1923–24 में सर्वप्रथम सामने लाया गया जब मार्क्स द्वारा लिखे गए विचार आर्थिक एवं दार्शनिक पाडूँलिपियों (1844) का 1932 ई. में प्रकाशन किया गया।

3.16 पूँजीवाद का विश्लेषण व भविष्य सम्बन्धी धारणा (Anaylsis of Capitalism & Its Future) –

मार्क्स पूँजीवादी व्यवस्था का विश्लेषण करता है तथा उसके भविष्य की धारणा को स्पष्ट करता है। पूँजीवाद लाभ के लिए उत्पादन करता है व इसमें परस्पर दो विरोधी वर्गों का हित पाया जाता है। पूँजीपतियों की पूँजी में निरन्तर वृद्धि होती जाती है जिससे अति उत्पादन संकट उत्पन्न हो जाता है। इसके बाद पूँजीपतियों के प्रतियोगिता तत्व का अन्त हो जाता है व पूँजीवाद की समाप्ति होती है।

3.17 राज्य व शासन सम्बन्धी धारणा (The Marxist View of State & Government) –

मार्क्स की राज्य व शासन सम्बन्धी धारणा अन्य सभी विचारधाराओं से पृथक् है। कार्ल मार्क्स राज्य को एक वर्गीय संस्था के रूप में मानते हैं। मार्क्स के अनुसार राज्य की उत्पति ही वर्ग विभेद है। राज्य शोषण का यन्त्र रहा है।

कार्ल मार्क्स के राज्य व शासन सम्बन्धी विचारों को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है –

1. राज्य की उत्पति का कारण वर्ग विभेद है व राज्य शोषक वर्ग के हितों की सुरक्षा करता है।
2. राज्य व शासन शोषण का यंत्र है अर्थात् राज्य व शासन शोषक वर्ग की शोषित वर्ग के शोषण में सहायता करता है।
3. संक्रमण काल में सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व – राज्य की समाप्ति या शोषक वर्ग की समाप्ति हेतु कुछ समय के लिए सर्वहारा वर्ग अर्थात् श्रमिक व कृषक वर्ग का अधिनायकत्व रहेगा जिससे राज्य व पूँजीवाद(बुर्जुआ वर्ग) के बचे हुए अवशेषों को समाप्त किया जा सके।
4. राज्य विहीन तथा वर्ग विहीन समाज की स्थापना का आधार प्रस्तुत करता है।

आलोचना –

1. राज्य एक वर्गीय संगठन नहीं है वरन् यह एक नैतिक संगठन है।
2. वर्तमान में राज्य सर्वहारा वर्ग का शत्रु न होकर मित्र है जो सर्वहारा के कल्याण हेतु कार्य करता है।
3. राज्य अस्थायी नहीं वरन् स्थायी है।
4. मार्क्स द्वारा राज्य के विलुप्त होने की धारणा कपोल–कल्पित है।

3.18 लोकतंत्र, धर्म और राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में मार्क्सवाद की धारणा (Marxist View of Democracy, Religion & Nationalim) –

मार्क्स लोकतंत्र, धर्म और राष्ट्रवाद तीनों को शोषित वर्ग के शोषण का साधन मानता है तथा धर्म को अफीम की संज्ञा देता है। धर्म श्रमिकों का शोषण करता है मार्क्स कहता है कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता है इसलिए वह विश्व के सम्पूर्ण मजदूरों को एक होने का संदेश देता है। इस प्रकार वह राष्ट्रवाद की अवधारणा को भी व्यर्थ बताता है।

मार्क्सवादी कार्यक्रम – मार्क्सवादी कार्यक्रम के तीन चरण है

1. पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति
2. संक्रमण काल के लिए सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व
3. राज्य विहीन व वर्ग विहीन समाज की स्थापना अर्थात् पूर्ण साम्यवाद की स्थापना
4. साम्यवादी समाज तकनीकी दृष्टि से प्रगतिशील व उन्नत समाज होगा।

3.19 मार्क्सवाद की आलोचना (Criticism of Marxism) –

मार्क्सवाद की कई विचारकों ने कटु आलोचना की है। उदारवादियों ने सर्वहारा की तानाशाही को सोवियत संघ के स्टालिनवादी शासन और चीन के माओवादी सर्वाधिकारवाद के परिप्रेक्ष्य में लोकतंत्र विरोधी तानाशाही माना है। वास्तव में सर्वहारा की तानाशाही सोवियत संघ में सर्वहारा पर तानाशाही थी। कार्लपॉपर ने मार्क्सवाद की तुलना एक ऐसे बन्द समाज से की है जहाँ लोकतंत्र और स्वतंत्रता दोनों का ही अभाव रहता है। बर्नस्टीन ने अपनी पुस्तक ' विकासवादी समाज ' (1899) तथा कॉटस्की ने अपनी पुस्तक ''सर्वहारा की तानाशाही'' में मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष, क्रान्ति तथा सर्वहारा की तानाशाही के सिद्धान्तों को शान्तिपूर्ण एवं संविधानिक सुधार के आधारों पर अनुचित बताया है। रोजा लक्जेमबर्ग ने अपनी पुस्तक 'रुसी क्रान्ति' (1940) में शासन पर जन नियन्त्रण के अभाव और प्रेस की स्वतंत्रता के अभाव के कारण मार्क्सवाद की आलोचना की है। वस्तुतः मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त समाज में निरन्तर संघर्ष की बात करते हुए सभी प्रकार के सहयोग एवं

समन्वय की संभावना को समाप्त कर देता है। ऐसे में सतत् सामाजिक हिंसा और बाधा की स्थिति बनी रहती है।

मार्क्सवाद के अन्तर्गत समाज के लिए आर्थिक आधार पर वर्ग विभाजन भी सत्य से परे है। वस्तुतः अन्य सामाजिक कारकों यथा धर्म, नस्ल, जाति, प्रजाति इत्यादि के आधार पर भी कई विभाजन और विभेद की स्थिति बनती है इसलिए पदार्थ पर अधिक महत्त्व व्यर्थ है। व्यवहार में मार्क्सवादी अनुभव अत्यधिक पीड़ादायक रहा है। सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप, चीन, कम्बोडिया, क्यूबा व उत्तर कोरिया मार्क्सवादी हिंसा, लोकतंत्र के दमन तथा बाधित विकास के पर्याय के रूप में ही सामने आये है।

मार्क्सवाद की आलोचना निम्न आधारों पर की जा सकती है–

एलेक्जेंडर ग्रे के अनुसार " निसन्देह मार्क्स ने अपने विचारों का निर्माण करने वाले तत्व अनेक स्त्रोतों से लिए है लेकिन उसने उन सबका प्रयोग एक ऐसी इमारत के निर्माण हेतु किया है जो स्वयं उसके अपने नमूने की है। "

1. जड़ तत्व एवं चेतना तत्व को पूर्ण रूपेण अलग कर पाने में असमर्थ रहा है।
2. जड़ तत्व में स्वतः परिवर्तन सम्भव नहीं है।
3. इस सिद्धान्त में मौलिकता का अभाव है।
4. मार्क्सवाद हिंसा व क्रान्ति को प्रोत्साहन देता है।
5. व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए घातक है।
6. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद व इतिहास की आर्थिक व्याख्या एकपक्षीय व काल्पनिक है।
7. राज्य की विलुप्त होने की धारणा काल्पनिक है।
8. मार्क्सवाद राज्य को शोषण का यंत्र मानता है, जो अनुचित है।
9. लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और धर्म के सम्बन्ध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अनुचित है।
10. मार्क्स का दो वर्गों का विचार अव्यवहारिक है।

3.20 राजनीतिक चिन्तन में मार्क्सवाद का योगदान (Contribution of Marxism in Political Thought)

राजनीतिक चिन्तन में मार्क्सवाद ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसने विश्व को समझने का एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया।

1. मार्क्सवाद विभिन्न विचारधाराओं को आधार प्रदान करता है।
2. उदारवाद को चुनौती।
3. मार्क्सवाद समाजवाद की एक व्यवहारिक व वैज्ञानिक योजना प्रस्तुत करता है।
4. मार्क्सवाद ने श्रमिक वर्ग में एक नवीन जागृति उत्पन्न की।
5. मार्क्स समाज का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

मार्क्स द्वारा समाजवाद लाने का एक ठोस एवं सुसंगत कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया जिसने विश्व में एक नई हलचल उत्पन्न कर दी। मार्क्स के विचारों को आधार बनाकर लेनिन ने 1917 ई में सोवियत संघ में साम्यवादी शासन की स्थापना कर मार्क्स के विचारों को व्यवहारिक आधार प्रदान किया।

इसी विचारधारा के आधार पर माओत्से तुंग ने चीन में क्रान्ति के माध्यम से 1949 ई. साम्यवादी शासन की स्थापना की मार्क्सवाद के कारण पूँजीवाद ने अपने आप को सुधारने का प्रयास किया व लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का उदय हुआ।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई 1818 को जर्मनी में तथा मृत्यु 18 मार्च 1883 को लन्दन में हुई।
- मार्क्स समाजवाद की अवधारणा को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने वाला विचारक व प्रणेता।
- दास कैपिटल एवं कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो कार्ल मार्क्स की दो प्रसिद्ध रचनाएँ है।
- मार्क्स के प्रमुख विचार – द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त, राज्य की अवधारणा, अलगाववाद का सिद्धान्त।
- मार्क्स, मानव इतिहास की छः अवस्थाएँ मानता है आदिम साम्यवादी अवस्था, दास अवस्था, सामंती अवस्था, पूँजीवादी अवस्था, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व व साम्यवादी अवस्था।

मार्क्स का योगदान –

- स्वप्नलोकीय समाजवाद को वैज्ञानिक स्वरूप दिया।
- श्रमिक व सर्वहारा वर्ग में चेतना जागृत की।
- उदारवाद को चुनौती व निर्णयवाद का समर्थन।
- विचारों का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया।

मार्क्सवाद की आलोचना के आधार –

- प्रजातंत्र का विरोधी
- समाज में हिंसा व संघर्ष को प्रोत्साहन
- राज्य विहीन समाज अर्थात् अराजकता का समर्थन
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विरोधी
- इतिहास की आर्थिक व्याख्या एकपक्षीय व अव्यावहारिक

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. मार्क्सवाद का प्रमुख प्रवर्तक विचारक किसे माना जाता है ?

(अ) फोरियर (ब) कार्ल मार्क्स
(स) एम. एम राय (द) लुई ब्लाक ( )

2. समाजवाद की विश्लेषण आधारित व्यावहारिक योजना के प्रतिपादक है –

(अ) जैनी (ब) राम मनोहर लोहिया

(स) कार्ल मार्क्स (द) टेलर ( )

3. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विचार मार्क्स ने किस विचारक से प्रभावित होकर लिया –

(अ) एंजिल (ब) जॉन सिलमेण्डी

(स) साइमन (द) हीगल ( )

4. नीचे कुछ विचार दिए गए है इनमें से कौनसा मार्क्सवाद से मेल नहीं खाता है –

(अ) केन्द्रीकृत संगठित राज्य

(ब) वर्ग संघर्ष की अवधारणा

(स) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

(द) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या ( )

5. कार्ल मार्क्स ने समाज में कौनसे वर्ग का अस्तित्व स्वीकार किया –

(अ) मध्यम व पूँजीपति (ब) सर्वहारा व पूँजीपति

(स) निम्न व मध्यम (द) शोषित वर्ग ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स का सबसे घनिष्ठ मित्र कौन था ?
2. मार्क्स की किन्हीं दो रचनाओं के नाम बताइए ?
3. धर्म को अफीम के समान कौनसा विचारक मानता है ?
4. मार्क्स राज्य को किस वर्ग का हित संरक्षक मानता है ?
5. वर्तमान विश्व व्यवस्था में मार्क्स के विचारों का सर्वाधिक प्रभाव किस देश में देखा गया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वर्ग संघर्ष की अवधारणा क्या है ?
2. मार्क्स मानव इतिहास की कितनी अवस्थाएँ बताता है ? नाम बताइये।
3. मार्क्स को व्यवस्थित वैज्ञानिक समाजवाद का प्रवर्तक क्यों माना गया है ?
4. मार्क्सवादी दर्शन के प्रमुख स्त्रोत क्या है ?
5. मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का सारांश लिखिए ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्क्सवादी अवधारणा राजनीतिक चिन्तन को एक नई दिशा देती है। क्या आप इससे सहमत है ? विस्तृत टिप्पणी दीजिए।
2. मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कितना प्रासंगिक है?समीक्षा कीजिए।
3. द्वन्दात्मक भौतिक अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवादी अवधारणा की प्रासंगिकता बताइए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. स 3. द

4. अ 5. ब

4. गाँधीवाद (Gandhism)

गाँधीजी के विचारों और आदर्शों का ही दूसरा नाम गाँधीवाद है। वर्तमान में, गाँधीजी के इन्हीं विचारों तथा आदर्शों को "गाँधी दर्शन", "गाँधी मार्ग", "गाँधीवादी राजनीतिक दर्शन" तथा "गाँधीवाद" इत्यादि नामों से जाना जाता है। इन विचारों तथा आदर्शों को भिन्न–भिन्न नाम इसलिये दिये गये हैं कि गाँधी स्वयं किसी 'वाद', सम्प्रदाय या सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते थे और न ही अपने पीछे किसी प्रकार का 'वाद' छोड़ना चाहते थे। उनका तरीका प्रयोगात्मक, अनुभववादी तथा वैज्ञानिक था। गाँधीजी कार्य में विश्वास करते थे; वह कर्मयोगी थे, यदि इन विचारों को सिद्धान्त कहा जाए, तो उचित रहेगा।

4.1 गाँधी व उनके जीवन मूल्य (Gandhi & His Human Values) –

गाँधी सत्य, अहिंसा, प्रेम, भ्रातृभाव आदि के पुजारी थे। इनकी व्याख्या कर वह व्यक्ति को उसकी विकृत प्रवृत्तियों से हटाना चाहते थे। वे राजनीति को पवित्र करना चाहते थे तथा उसे धर्म और न्याय पर आधारित करना चाहते थे। गाँधी व्यक्ति में प्रेम और स्वतन्त्रता का संचार करना चाहते थे; व्यक्ति को पुरूषार्थ का महत्त्व समझाना चाहते थे। इस प्रकार गाँधीवाद जीवन शैली या जीवन दर्शन से सम्बन्धित है किसी सिद्धान्त से नहीं। बी.पी. सीतारमैया के शब्दों में, ''गाँधीवाद सिद्धान्तों का, मतों का, नियमों का, विनियमों का और आदेशों का समूह नहीं है। वह जीवन शैली या जीवन दर्शन है।'' यह एक नई दिशा की ओर संकेत करता है तथा मनुष्य के जीवन तथा समस्याओं के लिए प्राचीन समाधान प्रस्तुत करता है। गाँधीवाद एक ऐसा दर्शन है जो सबके कल्याण की बात करता है; हिंसक शस्त्रों के स्थान पर अहिंसक साधनों को अधिक श्रेष्ठ मानता है; शत्रुता के स्थान पर मित्रता और घृणा के स्थान पर प्रेम का भाव सिखाता है; इसमें कार्य की प्रेरणा का स्त्रोत सत्य, धर्म और ईश्वर है। इसमें छल, कपट, स्वार्थ, क्रूरता, हिंसा, द्वेष इत्यादि विकृत प्रवृत्तियों का स्थान नहीं। गाँधीवाद साध्य व साधन की पवित्रता पर बल देता है।

4.2 गाँधीवाद विचारों का एक समूह मात्र (Gandhism – A Pool of Ideas)–

गाँधीजी ने जीवन की भिन्न–भिन्न समस्याओं पर परिस्थितिजन्य विचार व्यक्त किये है। उनका नाम किसी एक विचार से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता है। गाँधीजी के आदर्शों के जो आधार थे – सत्य, अहिंसा, प्रेम, भ्रातृभाव। वे किसी व्यक्ति, देश या समय के लिए नहीं थे बल्कि वे मानवता के लिए और सार्वदेशिक तथा सार्वभौमिक हैं। गाँधीजी ने इस सन्दर्भ में एक बार कहा था कि ''गाँधी मर सकता है परन्तु सत्य, अहिंसा सर्वदा जीवित रहेंगें।'' गाँधीजी एक सिद्धान्त या पद्धति से चिपके नहीं रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन में विश्वास रखते थे।

गाँधीजी विचारशील होने के साथ–साथ आचारवान् व्यक्ति थे। जिस विचार को वह आचार में नहीं ला सकते थे उसे वह बहुत गौण समझते थे। वह ऐसे व्यक्ति थे जो ईश्वर पर अटल विश्वास रखते हुए और अहिंसा के मार्ग को अपनाते हुए, अपने कार्यों को विश्वास के आधार पर करते थे। गाँधीजी के विचार व्यापक, बहुमार्गी और बहुआयामी थे। वह जहाँ, एक ओर व्यक्तिवादी, व्यावहारिक, आदर्शवादी, समाजवादी, उदारवादी, अनुदारवादी, राष्ट्रवादी, अन्तर्राष्ट्रवादी तथा सर्वोदयवादी थे। वह ये सब और इन सबसे भी अधिक मानवतावादी थे। गाँधीजी समूहवादी विचारक थे उनके विचारों में भारतीय व पाश्चात्य दोनों श्रेणी के विचारकों के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। वह महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध, सुकरात, थोरो, क्रोपोटकिन एवं रस्किन के विचारों से प्रभावित थे। उनके विचारों में भगवत् गीता व उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

गाँधीजी का पूरा जीवन दर्शन अध्यात्म पर आधारित था। उन्होंने पूँजी की अपेक्षा धर्म पर कहीं अधिक बल दिया। गाँधीजी ने मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या को भी नकार दिया है क्योंकि वह हिंसा पर आधारित थी। उन्होंने मार्क्स के समाजवाद को भी हिंसा पर आधारित होने के कारण अस्वीकार कर दिया। वह मार्क्स के वर्ग संघर्ष संबंधी विचारों से सहमत नहीं थे। उसके स्थान पर वह वर्ग समन्वय व वर्ग सामंजस्य जैसी समाज को बाँधकर रखने वाली विचारधारा के पक्षधर थे। ''हरिजन सेवक'' में 20.03.1937 को उन्होंने स्वंय लिखा है कि ''मनुष्य –मनुष्य के बीच असमानता का, ऊँच–नीचपन का विचार बुरा है पर इस बुराई को मैं मनुष्य के हृदय से तलवार के बल नहीं निकालना चाहता।''

गाँधीजी ने आध्यात्मिकता से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रगति का विचार रखा। वह आध्यात्मिक समाजवाद के प्रतिपादक थे, इसलिए उन्होंने इतिहास की आध्यात्मिक व्याख्या की थी। उन्होंने केवल भौतिक कार्यकलापों या भौतिकवाद को सभ्यता व सँस्कृति का वाहक नहीं माना। उन्होंने गहन आन्तरिक विकास पर बल दिया। गाँधीजी की धारणा है कि मानवजाति की ऊर्जा के प्रमुख स्त्रोत सत्य, अहिंसा और प्रेम है। गाँधीजी ने मार्क्स के समाजवाद व वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के विपरीत वर्ग सहयोग व आध्यात्मिक समाजवाद की वकालात की। गाँधीजी का समाजवाद नैतिकता, हिन्दुत्व, ग्राम्य मानवतावादी ओर प्रजातंत्र पर खड़ा था, जिसे केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर, कत्ल या रक्तपात से स्थापित नहीं किया जा सकता। सच्चा समाजवाद अनुग्रह, सद्भावना और प्रेम पर आधारित होता है।

जहाँ वह निरपेक्ष प्रभुता व सत्ता के विरोधी थे वहाँ, गाँव

रूपी संघों (Village Republics) में समन्वय स्थापित करने तथा व्यवस्था के लिए राज्य को आवश्यक समझते थे। वे राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण में विश्वास करते थे, दूसरी ओर सर्वोदय के लिए यदि आवश्यक हो तो ओद्योगीकरण और राष्ट्रीयकरण से भी नहीं हिचकिचाते थे। वह कार्ल मार्क्स के राज्य विहिन, वर्ग विहिन समाज के समर्थक थे वहीं, दूसरी ओर मार्क्स की इतिहास की भौतिक व्याख्या, वर्ग–संघर्ष और हिंसा के प्रयोग के घोर विरोधी थे, वे केवल कार्यों में बल्कि विचारों और भावनाओं में भी हिंसा को स्वीकार नहीं करते थे। गाँधीजी उदारवादी और नैतिकतावादी भी थे। वह जीवन में स्वनियन्त्रण और संयम को बहुत महत्त्व देते थे, वह जीवन में अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को महत्त्व देते थे। उनके लिये जो व्यक्ति "अपनी आवश्यकताओं से अधिक उपभोग करता है" वह गरीबों का शोषण करता है तथा उन पर अन्याय करता है।

गाँधीजी ने अपने विचारों की व्याख्या अपनी रचनाओं विशेषकर हिन्द स्वराज्य, आत्मकथा और पत्रिकाओं विशेषकर हरिजन, यंग इण्डिया, इण्डियन ओपीनियन, नवजीवन, आर्यन पथ और अनेक भाषणों में की है। बाद में चिन्तकों ने इन्हीं का संग्रह करके इसे गाँधीवाद के नाम से सामने रखा।

4.3 गाँधीवाद के स्रोत (Sources of Gandhism) –

गाँधीजी के विचारों पर चार प्रकार के प्रभाव नजर आते हैं – (1) धार्मिक ग्रन्थों का प्रभाव, (2) दर्शन का प्रभाव, (3) सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव और (4) सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव।

1. धार्मिक ग्रन्थों का प्रभाव –

(अ) **सनातन धर्म ग्रन्थों का प्रभाव** – गाँधीजी पूर्ण धार्मिक व्यक्ति थे, अध्यात्म उनका प्रिय विषय था। इसी कारण उनके विचार, भावनायें तथा कार्य धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत थे। उनमें इन धार्मिक भावनाओं का विकास पूर्व व पश्चिम के ग्रन्थों के अध्ययन से हुआ। पातंजली के योग सूत्र का अध्ययन तो उन्होने सन् 1903 में अफ्रीका के जोहन्सबर्ग जेल में ही कर लिया था। उपनिषदों का उन्होने गहरा अध्ययन किया था। अपरिग्रह (किसी वस्तु को आवश्यकता से अधिक एकत्रित न करना) तथा त्याग (किसी का मोह न करना) जैसे व्रतों को उन्होने उपनिषदों से प्राप्त किया। वेदों तथा रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का प्रभाव भी उन पर अत्यधिक था। गाँधीजी रामायण को भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते थे। भगवत् गीता के तो गाँधीजी भक्त ही थे। यह पुस्तक उनकी 'पथ–प्रदर्शक', 'आध्यात्मिक निर्देशक' तथा 'आध्यात्मिक माता' ही थी। यह उनका 'धार्मिक कोष' थी। यह उन्हें अंधेरे में उजाला, सन्देह में विश्वास, हतोत्साह में आशा की किरण दिखाती थी। गाँधीजी ने जो कर्म पर बल दिया वह गीता की देन है। गीता का यह वाक्य कि "कर्म करो, फल की चिन्ता मत करो।" उनके जीवन क्रियाओं का आधार बन गया।

(ब) जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव गाँधीजी के अहिंसा नामी पथ प्रदर्शन से स्पष्ट हो जाता है। यह जैन साधु बेचारजी थे जिन्होने गाँधीजी से इग्लैण्ड जाते समय तीन प्रतिज्ञाएँ लीं कि वह कभी मदिरा, पराई स्त्री और माँस को नहीं छुएँगे।

(स) बाईबिल का प्रभाव तो इतना प्रत्यक्ष था कि उसने गाँधीजी के हृदय में तत्काल स्थान प्राप्त कर लिया। "बुराई को भलाई से", "शत्रुता को मित्रता से", "हिंसा को अहिंसा से", "बद्दुआ को दुआ से", "घृणा को प्रेम से", "अत्याचार को प्रार्थना से", जीतने का मार्ग गाँधीजी ने इस धर्मग्रंथ से सीखा।

गाँधीजी पर चीनी विचारक लाओ त्से और कन्फ्यूशियस की विचारधाराओं का भी प्रभाव पड़ा। नम्रता, अच्छाई, शुद्धता और न अड़ने के विचार गाँधीजी ने इन्हीं की विचारधाराओं से प्राप्त किये। इस्लाम की शान्तिवादी शिक्षाओं का प्रभाव भी गाँधीजी पर पड़ा। जिस प्रकार हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म को गाँधीजी शान्ति के धर्म मानते थे उसी प्रकार इस्लाम धर्म को भी वह शान्ति का धर्म मानते थे। इन धार्मिक ग्रंथों के प्रभाव के कारण ही गाँधीजी ने अपने जीवन में निम्न विचारों को अपनाया – (1) सत्य; (2) अहिंसा; (3) ब्रह्मचर्य; (4) अस्वाद; (5) अस्तेय; (6) अपरिग्रह; (7) अभय; (8) अस्पृश्यता निवारण; (9) शारीरिक श्रम; (10) सर्वधर्म; समभाव; (11) स्वदेशी। धार्मिक ग्रन्थों का गाँधीजी के जीवन और विचारों पर अत्यधिक प्रभाव होते हुए भी वह उन पर अन्धविश्वास नहीं करते थे बल्कि जो धार्मिक तथ्य उनकी तर्क बुद्धि पर खरे उतरते थे उन्हें ही स्वीकार करते थे। गाँधीजी के शब्दों में, "धार्मिक पुस्तक की किसी बात को मैं तर्क बुद्धि से अधिक महत्त्व नहीं देता।"

2. **दार्शनिकों का प्रभाव** – गाँधीजी के विचारों पर अनेक दार्शनिकों का प्रभाव था जिनमें से मुख्य हैं – जॉन रस्किन, हेनरी डेविड थोरो, लियो टॉलस्टाय व सुकरात।

3. **सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव** – भारत में चल रहे सांस्कृतिक, दार्शनिक एवम् धार्मिक सुधारावादी आन्दोलनों का प्रभाव भी गाँधीजी पर पड़ा, राम कृष्ण और विवेकानन्द का प्रभाव तो विशेषकर उन पर था। स्वदेश प्रेम और स्वदेशी की भावना तो गाँधीजी ने इन्हीं से सीखी।

4. **सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव** – भारतीयों की असहाय अवस्था और गरीबी का प्रभाव भी गाँधीजी के विचारों पर पड़ा जो उनके समाजवादी विचारों का आधार था।

4.4 दक्षिण अफ्रीका गाँधीजी के प्रयोगों की प्रयोगशाला (South Africa As A Laboratory of Gandhi's Experiments) –

दक्षिण अफ्रीका गाँधीजी के प्रयोग की प्रयोगशाला थी; वहीं पर उनकी धार्मिक चेतना का विकास हुआ; वहीं पर उन्होने पश्चिम के लेखकों की विचारधाराओं का अध्ययन किया। वहीं पर उनके राजनीतिक दर्शन सत्याग्रह का विकास, श्वेत

जातिवाद के प्रतिरोध में हुआ तथा उसके प्रारम्भिक प्रयोग भी वहीं किये। वहीं पर उनमें निःस्वार्थ मानव सेवा की भावना पैदा हुई तथा अपने समाज के प्रति कर्त्तव्यों की अनुभूति हुई। वहीं पर उनके प्रमुख राष्ट्रवादी विचार बने तथा श्रमिकों के कार्य के महत्त्व को भी उन्होंने वहीं समझा।

4.5 राजनीति का आध्यात्मीकरण (Spiritualisation of Politics)–

गाँधीजी के लिए धर्म और राजनीति एक ही कार्य के दो नाम है। उनका विश्वास है कि राजनीति का उद्देश्य, धर्म के उद्देश्य की तरह, उन सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाना है जो अन्याय, अत्याचार तथा शोषण पर आधारित है तथा समाज में न्याय तथा न्यायपरायणता की व्यवस्था करना है। मानव का प्रत्येक कार्य आदर्श न्याय से सम्बन्धित है। इस लिए मानवीय कृति का कोई भी पहलू दोनों के क्षेत्र से बाहर नहीं। इसके अतिरिक्त सच्चा धर्म और सच्ची राजनीति का सम्बन्ध मुख्य रूप से मानव जीवन और मानव क्रियाओं से है क्योंकि "मानव क्रियाओं से पृथक कोई धर्म नहीं है।" गाँधीजी के लिए इन दोनों का आधार भी सामान्य है जो नैतिकता के सामान्य मूल्यों द्वारा निर्धारित होता है।

इस प्रकार गांधी ने राजनीति को नैतिक और मानवतावादी धर्म पर आधारित करने का विचार रखा। किन्तु यहां यह भी स्पष्ट होना आवश्यक है कि गांधी राज्य–व्यवस्था को किसी धार्मिक समुदाय अथवा सम्प्रदाय की मान्यताओं पर संचालित नहीं करना चाहते थे। उनके अनुसार लोकतंत्र बहुसंख्यकवाद का पर्याय नहीं है और राज्य बहुसंख्यकों की तानाशाही का संरक्षक नहीं होना चाहिए अपितु उसे अल्पसंख्यकों की आस्थाओं का भी आदर करना होगा। राज्य किसी धार्मिक समुदाय विशेष का पक्ष पोषक नहीं होकर मानवतावादी व नैतिक धर्म का संरक्षक होना चाहिए।

4.6 साध्य और साधनों की पवित्रता (Purity of Means & Ends)–

गाँधीजी के विचारों की यह विशेषता है कि इनमें साध्य और साधन में कोई भिन्नता नहीं। वह कहा करते थे, "मेरे जीवन दर्शन में साधन और साध्य संपरिवर्तनीय शब्द है" न केवल साध्य ही नैतिक, पवित्र, शुद्ध और उच्च होने चाहिए बल्कि साधन भी उसी मात्रा में नैतिक, पवित्र और शुद्ध होने चाहिए। वह दोनों को अविभाज्य समझते थे। उनके लिए "साधन एक बीज की तरह है और साध्य एक पेड़, साधन और साध्य में वहीं सम्बन्ध है जो बीज और पेड़ में है" अगर "कोई व्यक्ति साधनों का ध्यान रखता है तो साध्य स्वयं अपना ध्यान रखेगा।" गाँधीजी ने भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता की लड़ाई में किसी भी पहलू पर अपवित्र (हिंसक) साधनों का समर्थन नहीं किया, उस समय भी नहीं जब उत्तेजना सरकार द्वारा प्रोत्साहित होती थी। गाँधीजी के लिए अपवित्र साधनों का प्रयोग तो दूर उनकी कल्पना भी त्याज्य थी। गाँधीजी छल, कपट, हत्या और पशु बल के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के इच्छुक नहीं थे। उनके शब्दों में, "मैं तो अहिंसा और सत्य हेतु देश को होमने के लिए तैयार हूँ, देश के लिए अहिंसा और सत्य को नहीं।" साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर बल देकर गाँधीजी ने राजनीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।

मानव प्रकृति – प्रत्येक दर्शन, धर्म या राजनीतिक प्रणाली में मूल प्रश्न "मानव प्रकृति" का होता है। यद्यपि दार्शनिक मानव प्रकृति के बारे में भिन्न–भिन्न विचार रखते हैं परन्तु प्रत्येक दर्शन मानव की परिभाषा या मानव प्रकृति के विश्लेषण से ही आरम्भ होता है। कुछ के लिए, जैसे मैकियावली तथा हाब्स, मानव को झगड़ालू, स्वार्थी तथा ईष्यालु तथा वहीं रूसो ने शान्त एवम् न्यायप्रिय माना।

अहिंसा – अहिंसा का अर्थ है मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना अर्थात् किसी का दिल न दुखाना। अहिंसक व्यक्ति प्रेम, दया, क्षमा, सहानुभूति और सत्य की मूर्ति होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। विश्व प्रेम, जीव मात्र पर करूणा और उससे प्रकट होने वाली, अपनी देह को ही होम देने वाली, शक्ति का नाम अहिंसा है। अहिंसा प्रेम की एक जड़ी–बूटी है जो कट्टर शत्रु को भी मित्र बना सकती है, शक्ति से शक्तिशाली अस्त्र को परास्त कर सकती है। यह वह शक्ति है जो अजय है। यह "आत्मा का गुण है" जो चिरंजीवी है।

सत्याग्रह की उत्पत्ति – सत्याग्रह शब्द की उत्पत्ति गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में की थी। इंग्लैण्ड़ और दक्षिण अफ्रीका में चल रहे निष्क्रिय प्रतिरोध में भेद दिखाने के लिए भी इस शब्द की उत्पत्ति की गई थी। विन्सेन्ट शीयन के शब्दों में वह "सर्वोच्च आविष्कार या उत्पत्ति थी" इसके द्वारा गाँधीजी ने हिंसक जगत को अहिंसा की शिक्षा दी।

सत्याग्रह का अर्थ – साधारण भाषा में सत्याग्रह बुराई को दूर करने अथवा विवादों को अहिंसक तरीकों से दूर करने का तरीका है। साधारण भारतीय नागरिक के लिए यह भारतीयों की अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई का तरीका था। प्रो. एन.के. बोस के शब्दों में, "सत्याग्रह अहिंसक तरीकों द्वारा युद्ध का संचालन करने का तरीका है।" वस्तुतः, सत्याग्रह "अहिंसक सीधी कार्यवाही है।"

साहित्यिक दृष्टि से सत्याग्रह एक संयुक्त शब्द है जो सत्य + आग्रह को मिलाकर बना है। इसका अर्थ है सत्य के लिए आग्रह करना अर्थात् जिसे व्यक्ति सत्य समझता है उस पर जीवन पर्यन्त दृढ़ या डटा रहना। यह सत्य पर आरूढ़ रह कर बुराई का विरोध है। जो कुछ असत्य है उसका विरोध सत्याग्रह है। हर स्थिति में सत्य की राह पकड़े रहना सत्याग्रह है। हिंसा, भय और मृत्यु उसे इस पथ से विचलित नहीं कर सकते। सत्य के लिए अपने जीवन की बाजी लगा देना ही सत्याग्रही के कार्यक्रम का केन्द्र बिन्दु है। यह "सत्य के लिए तपस्या है।"

इन विशेषताओं के बिना सत्याग्रह अधूरा है –

(1) ईश्वर में श्रद्धा (2) सत्य–अहिंसा पर अटल विश्वास (3) चरित्र (4) निर्व्यसनी (5) शुद्ध ध्येय (6) हिंसा का त्याग (7) उत्साह, धैर्य और सहिष्णुता

सत्याग्रह सर्वव्यापी हो सकता है। यह सबके विरुद्ध हो

सकता है – सरकार, कौम, जाति, व्यक्ति विशेष, समूह – यदि वे दूषित है। यह केवल शासकों और शासितों के बीच की वस्तु नहीं। जितना इसका प्रयोग शासन की अत्याचारी नीतियों या अन्याय के विरुद्ध किया जा सकता है, उतना ही इसका प्रयोग सामाजिक कुरीतियों जैसे सामाजिक बुराईयों (अस्पृश्यता), साम्प्रदायिक झगड़ों, इत्यादि को दूर करने के लिए भी किया जा सकता है। गाँधीजी ने अनेक बार इसके सफल प्रयोग किए भी थे।

सत्याग्रह के स्वरूप – सत्याग्रह के मुख्य रूप निम्न प्रकार से हैं–

1. **असहयोग तथा उसके स्वरूप** – सत्याग्रह की प्रविधियों में असहयोग प्रथम प्रविधि है। गाँधीजी इसे "सन्तृप्त प्रेम की अभिव्यक्ति" कहते थे। इसका अभिप्राय यह है कि जिसे व्यक्ति 'असत्य', 'अवैध, 'अनैतिक', या 'अहितकर' समझता है अर्थात् जिसे व्यक्ति बुराई समझता है उसके साथ सहयोग नहीं करता। गाँधीजी के लिए बुराई के साथ असहयोग करना न केवल व्यक्ति का कर्त्तव्य है बल्कि उसका धर्म भी है। गाँधीजी की यह धारणा थी कि जब लिखा–पढ़ी, याचिकाएँ असफल हो जाती है तो बुराई के साथ असहयोग करके सफलता प्राप्त की जा सकती है।

असहयोग कई प्रकार का रूप धारण कर सकता है –

(अ) हड़ताल (ब) सामाजिक बहिष्कार (स) धरना

(अ) **हड़ताल** – विरोध स्वरूप कार्य को स्वेच्छापूर्वक बन्द करने को हड़ताल कहते हैं। "हड़ताल स्वेच्छापूर्वक तथा अन्तःशुद्धि के लिए आत्मोत्सर्ग है जो अनुचित मार्ग पर जाने वाले विरोधी का हृदय परिवर्तन करने वाली होती है।" हड़ताल एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्तियों का समूह या समाज अपने भावों को प्रकट कर सकता है।

(ब) **सामाजिक बहिष्कार** – सामाजिक बहिष्कार एक बहुत पुरानी परम्परा है जिसका जन्म जातियों के उदय के साथ हुआ। यह निषेधात्मक है और एक ऐसा भयंकर दण्ड है जिसका प्रयोग बड़े प्रभावशाली ढ़ंग से किया जा सकता है। जिस व्यक्ति का बहिष्कार किया जाता है उसे समाज द्वारा एक प्रकार का दण्ड दिया जाता है क्योंकि उस समाज के अन्य सदस्यों से मेलजोल बढ़ाने का उसे कोई अवसर नहीं दिया जाता और व्यक्ति को सबसे बड़ा दण्ड उसे समाज से अलग करना है। इसी तरह जिस वस्तु का बहिष्कार किया जाता है उसके उत्पादन और खपत पर प्रहार करके बहिष्कार न केवल उस वस्तु को समाप्त करने का प्रयास करता है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से उसके उत्पादकों को हानि पहुँचाकर उन्हें भी दण्डित करता है। इसलिए गाँधीजी ने बहिष्कार को घेरेबन्दी की संज्ञा दी है।

(स) **धरना** – धरना देने का उद्देश्य "विचारों को बदलने" से है। यह अनिवार्य रूप से शान्तिमय होना चाहिए। इसमें "असभ्यता का व्यवहार", "जोर जबर्दस्ती", "धमकी", का प्रयोग नहीं होना चाहिए। गाँधीजी के शब्दों में, "शान्तिमय धरना उस व्यसन के खिलाफ एक दोस्ताना चेतावनी है जिसे सुधारक बुरा समझता है।"

2. **हिजरत** – हिजरत वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने निवास स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चला जाता है। इसका सहारा तब लिया जाता है वह व्यक्ति या जन समूह अपने आत्म–सम्मान को छोड़े बिना घरों या गाँव या देश में नहीं रह सकता तथा यह व्यक्ति या जन समूह अहिंसात्मक ढ़ंग से या हिंसात्मक ढ़ंग से अपनी रक्षा करने में असमर्थ है। दूसरे शब्दों में, जब व्यक्ति या जन समूह के पास न तो आत्मा की शक्ति हो और न उसके पास हिंसा की शक्ति (अस्त्र–शस्त्रों की शक्ति) हो तो उस समय हिजरत की क्रिया की जाती है। गाँधीजी ने आत्म–सम्मान को बचाने के लिए सन् 1928 में बारदोली और सन् 1939 में लिम्बड़ी, जूनागढ़ और विट्ठलगढ़ के सत्याग्रहियों को अपने घर छोड़ने की सलाह दी थी।

3. **सविनय अवज्ञा** – सविनय अवज्ञा सत्याग्रह की महत्त्वपूर्ण शाखा है। इसका अभिप्राय "अनैतिक अधिनियमित कानून को भंग करना है।" यह एक प्रकार की "अहिंसक क्रान्ति है।" गाँधीजी ने इसे "पूर्ण प्रभावी और सशस्त्र क्रान्ति का रक्तहीन स्थापन्न कहा है। यह प्रतिरोधी के विद्रोह को अहिंसक ढ़ंग से प्रकट करता है। यह कई रूप ले सकता है जैसे करों को देने से इन्कार करना, राज्य सत्ता को ही मानने से इनकार करना या एक–एक करके सारे अनैतिक कानूनों का विरोध कर सरकार के ढाँचे को ठप्प करना इत्यादि।

4. **उपवास** – उपवास ऐसा कष्ट है जिसे व्यक्ति अपने ऊपर स्वयं लागू करता है। यह सत्याग्रह के शस्त्रागार में सबसे शक्तिशाली अस्त्र है। उपवास को गाँधीजी ने "आध्यात्मिक औषधि" की संज्ञा दी है जिसका प्रयोग इसमें निपुण वैद्य ही कर सकता है। यह चिकित्सा विशिष्ट रोगों में ही फलदायी होती है। गलत जगहों पर प्रयोग करने से इसमें भारी जोखिम होता है। इस तरह अनुकूल परिस्थितियों में ही उपवास परम श्रेष्ठ अपील है।

4.7 गाँधीजी के आर्थिक विचार (Economic Views of Gandhi) –

गाँधीजी अर्थशास्त्री नहीं थे। इसलिए उनके आर्थिक विचार किसी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त पर आधारित नहीं थे। अपने आर्थिक विचारों में उन्होने अर्थशास्त्र के नियमों का पालन भी नहीं किया। उन्होने स्वयं किसी आर्थिक सिद्धान्त की रूप रेखा को स्पष्ट रूप से तैयार भी नहीं किया।

गाँधीजी का आर्थिक समस्याओं पर दृष्टिकोण उद्धारक था और उनके सुझाव समय, आवश्यकता और मानवता की दृष्टि से प्रेरित होते थे। उनके ये सुझाव वास्तविकता और स्वयं के अनुभव पर आधारित थे। यही कारण है कि गाँधीजी के आर्थिक विचार बदलते रहे। जहाँ हिन्द स्वराज में गाँधीजी के विचार "वर्तमान सभ्यता विरोधी", "यन्त्र विरोधी" और "पूँजी विरोधी" प्रतीत होते हैं वहाँ बाद में उनके विचार व्यवहारोपयोगी और यन्त्रों से समझौता करने वाले दिखाई देते हैं। यह भी हो सकता है कि उनके विचार उपनिवेश शासन से भी प्रभावित हुए हों।

4.8 वर्तमान समय और गाँधी (Present Time & Gandhi)–

1. **यन्त्रों पर निर्भरता दुःखदायी** – गाँधीजी ने अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में वर्तमान सभ्यता की भर्त्सना की है। यन्त्र के बारे में गाँधीजी के विचार रस्किन, टॉलस्टॉय और आर. सी. दत्ता के विचारों से प्रभावित थे। यन्त्र की तुलना गाँधीजी ने उस "साधन से की है जो मानव या पशु श्रम का पूरक या उसकी कुशलता बढ़ाने वाला नहीं बल्कि उसका ही स्थान प्राप्त करने वाला है।" यन्त्र में बुराइयाँ विद्यमान होने से गाँधी उसे अवांछनीय मानते हैं। उनके लिए यन्त्र में मुख्य तीन बुराइयाँ हैं – (क) इसकी नकल हो सकती है; (ख) इसके विकास की कोई सीमा नहीं; (ग) यह मानव श्रम का स्थान ले लेता है। इन बुराइयों के अतिरिक्त यन्त्रों में नैतिक और आर्थिक बुराइयाँ पाई जाती है।

2. **पूँजीवाद का विरोध** – गाँधीजी ने पूँजीवाद की भर्त्सना कड़े शब्दों में की है। उनका विश्वास है कि पूँजीवाद ने दरिद्रता, बेरोजगारी, शोषण और साम्राज्यवाद की भावनाओं को बढ़ावा दिया है। उनके लिए पूँजी का एकत्रीकरण अनैतिक है। पूँजीवाद के विरोध से यह नहीं समझना चाहिए कि गाँधीजी मार्क्स की भाँति पूँजीवाद का विरोध करते हैं। जहाँ मार्क्स "अतिरिक्त मूल्य" के पूँजीपति द्वारा हड़पने के आधार पर पूँजीवाद का विरोध करता है वहाँ गाँधीजी पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न असमानताओं के आधार पर उसका विरोध करते हैं। गाँधीजी का विरोध पूँजी से नहीं उसके द्वारा उत्पन्न असमानताओं से है।

4.9 आर्थिक–सामाजिक विषमताओं को दूर करने के गाँधीजी के सुझाव (Gandhi's Suggestions to Alleviate Social & Economic Inequalities)–

1. **अस्तेय और अपरिग्रह** – गाँधीजी ने अस्तेय को अहिंसा तथा सत्य के सहायक व्रत के रूप में स्वीकार किया है। अस्तेय का सामान्य अर्थ है चोरी न करना – अर्थात कोई वस्तु अथवा धन उसके स्वामी की बिना आज्ञा न लेना। उन्होंने शारीरिक, मानसिक, वैचारिक व आर्थिक सभी प्रकार की चोरी से सदा दूर रहने को ही अस्तेय माना। गाँधीजी ने अस्तेय की भांति अपरिग्रह के निष्ठापूर्वक पालन को भी आवश्यक माना। उन्होंने अपरिग्रह को केवल धन संचय न करने तक ही सीमित नहीं रखा है, प्रत्युत भविष्य के लिए किसी भी रूप में किसी भी प्रकार का संचय न करने को ही अपरिग्रह माना है। गाँधीजी की दृष्टि में अपनी अनिवार्य आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु को ग्रहण करके उसे भविष्य के लिए संचित करना अपरिग्रह का उल्लंघन है। प्रत्येक मनुष्य को निरन्तर श्रम करते हुए ही समाज से केवल उतना ही ग्रहण करना चाहिए, जितना उसके जीवन के लिए अनिवार्य हो; शेष सब कुछ उसे समाज के कल्याण के लिए समर्पित कर देना चाहिए। अपरिग्रह के दृढ़ता पूर्वक पालन से प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित रहेंगी तथा समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता का अंत संभव हो सकेगा। उनके लिए तो किसी प्रकार का शोषण तथा आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को अपने पास रखना या आवश्यकता से अधिक उनका प्रयोग करना मात्र भी चोरी है। गाँधीजी कहते हैं कि जीवन में निरपेक्ष अपरिग्रह सम्भव नहीं। इसलिए मानव को अनिवार्य न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही सम्पत्ति रखने का अधिकार है बाकी अपेक्षाधिक सम्पत्ति सर्वोदय अर्थात् सामान्य कल्याण के प्रयोग में लानी चाहिए।

2. **ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त** – वर्तमान आर्थिक असन्तोष को समाप्त करने के लिए गाँधीजी न तो पश्चिमी अर्थ–व्यवस्था को पसन्द करते थे, क्योंकि यह व्यवस्था पूँजीवाद पर आधारित होने से शोषण, प्रतिद्वन्द्विता और संघर्ष को जन्म देती है और न ही पूर्वी समष्टिवादी अर्थ व्यवस्था को पसन्द करते थे, क्योंकि यह हिंसा पर आधारित है, इसमें केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अधिक है और यह राज्य सत्ता के बढ़ाने में विश्वास रखती है। गाँधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के अनुसार पूंजीपति (जिसके पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति है) अपना आवश्यकतानुसार ही सम्पत्ति का प्रयोग करे व शेष सम्पत्ति का वह ट्रस्टी बन जाए व उसे जनकल्याण के कार्यों में लगाए।

गाँधीजी की ट्रस्टीशिप व्यवस्था में निम्न तत्व विद्यमान हैं–

1. यह वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को समतावादी समाज में परिवर्तित करने का साधन है।
2. इसमें पूँजीवाद का स्थान नहीं। परन्तु धन के वर्तमान स्वामियों को अपने आपको सुधार लेने का यह उन्हें अवसर प्रदान करता है।
3. यह हृदय परिवर्तन में विश्वास रखता है; इसकी धारणा है कि मानव को धन तथा लोभ की वृत्ति से मुक्ति दिलाई जा सकती है।
4. यह सम्पत्ति के निजी स्वामित्व के अधिकार को स्वीकार नहीं करता; यह केवल व्यक्ति की उचित आवश्यकताओं को स्वीकार करता है, जिन्हें समाज स्वीकार करता है।
5. आवश्यकता पड़ने पर यह सम्पत्ति को राज्य कानून द्वारा नियन्त्रित करने के पक्ष में है।
6. इसमें सम्पत्ति को स्वार्थ हित की सिद्धि के लिये न तो अपने पास रखा जा सकता है और न समाज के हितों के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है।
7. इसका सम्बन्ध वस्तु या धन के स्वामित्व से अधिक न होकर समाज कल्याण से अधिक है।
8. इसमें आय की न्यूनतम और अधिकतम सीमाऐं निर्धारित की जायेगी; इस न्यूनतम और अधिकतम आय में भिन्नताऐं उचित और साम्यिक होंगी; समय पर इनमें परिवर्तन होता रहेगा जिसका उद्देश्य इन भिन्नताओं को समाप्त करना होगा।
9. इसमें उत्पादन 'लाभ' द्वारा निर्धारित नहीं होगा बल्कि "सामाजिक आवश्यकता" द्वारा निर्धारित होगा।

3. **स्वदेशी** – स्वदेशी की परिभाषा गाँधीजी ने इस प्रकार दी – "इंसान में ऐसी प्रेरणा है, जो हमें इस बात के लिए प्रेरित करती है कि हम अपने नजदीक के वातावरण का प्रयोग करें

और दूर के वातावरण को छोड़ दें; जैसे धर्म में, हम अपने धर्म का पालन करें; राजनीति में, हम भारतीय राजनीतिक संस्थाओं का प्रयोग करें; आर्थिक क्षेत्र में, हम अपने पड़ोसी द्वारा बनाई गई वस्तुओं का प्रयोग करें और उन भारतीय उद्योगों को कुशल एवम् पूर्ण बनाये जिनमें हमें कमजोरियाँ नजर आती है।" स्वदेशी की इस परिभाषा से यह नहीं समझना चाहिए कि गाँधीजी सभी विदेशी वस्तुओं को वर्जित करना चाहते थे; उनकी स्वदेशी की परिभाषा किसी रूप में संकीर्ण नहीं थी। वह केवल उन विदेशी वस्तुओं को स्वीकार करते थे जो घरेलू या भारतीय उद्योगो को अधिक कुशल बनाने में अनिवार्य है। वह वस्तुओं के विनिमय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विश्वास करते थे। गाँधीजी भारत को विश्व से अलग नहीं करना चाहते थे, वह तो केवल स्वावलम्बन पर बल देते थे। वह विदेशी पूँजी और तकनीकी ज्ञान से भी समझौता कर सकते थे यदि उन्हें भारतीय नियन्त्रण में रखा जाए।

4. **खादी का अर्थशास्त्र** – भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण की गाँधीवादी योजना में खादी के अर्थशास्त्र का मुख्य स्थान है। गाँधीजी का विश्वास था कि आर्थिक संकट की समस्या को हल करने के लिए खादी अर्थात् चरखा बहुत ही प्राकृतिक, सरल, सस्ता और व्यावहारिक तरीका है। गाँधीजी का पूर्ण विश्वास था कि पूँजी और सत्ता के केन्द्रीकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का तथा उत्पादन और वितरण की समस्याएं खादी के पुनरूद्धार से हल की जा सकती है। खादी के अर्थशास्त्र में भी गाँधीजी एक जीवन दर्शन की झलक देखते थे। जहाँ खादी, एक ओर, जीवन की आवश्यकताओं को देश में ही पूरा करने की प्रेरणा देती है वहाँ, दूसरी ओर, ग्रामों को स्वावलम्बी बनाने का तरीका भी है ताकि कुल गिने चुन शहर ग्रामों का शोषण न कर सके। यह मिल व्यवस्था के अति केन्द्रीकरण का विकल्प है। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक दृष्टिकोण से यह संगठन और जन–सम्पर्क का आन्दोलन भी था, स्वतन्त्रता संग्राम में तो यह राष्ट्रवादियों के लिए एकता प्रदर्शन का प्रतीक बन गया जिसे प्रत्येक भारतीय आसानी से समझ सकता था। यद्यपि खादी का अर्थशास्त्र अमीर बनने के अर्थशास्त्र की माँगों को सन्तुष्ट नहीं करता परन्तु यह आलस्य और बेकारी की समस्या का तत्काल और स्थायी हल है। यह कृषि का पूरक भी है क्योंकि यह अन्य कुटीर उद्योगों का विकास करता है।

4.10 गाँधीजी के आर्थिक विचारों का मूल्याँकन (Evaluvation of Gandhi's Economic Views)–

गाँधीजी के आर्थिक विचारों की यह कह कर आलोचना की गई है कि वे अव्यावहारिक है; ये मानव समाज की उसकी प्रारम्भिक स्थिति में ले जाने वाले है; ये मानव प्रकृति के एक पहलू पर ही बल देते है तथा उसकी भौतिक आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हैं। उन्होने यन्त्रों की अनावश्यक भर्त्सना की है तथा वर्तमान सभ्यता और उसकी देन का सही मूल्याँकन नहीं किया। खादी का सिद्धान्त न केवल वर्तमान परिस्थितियों में गलत है बल्कि यह तकनीकी ज्ञान की उपलब्धियों की उपेक्षा भी करता है। ये विचार इतिहास की गति से अनभिज्ञ भी है।

गाँधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अव्यावहारिक है क्योंकि यह सिद्धान्त वस्तुनिष्ठ क्षेत्र में परिवर्तन लाने के स्थान पर व्यक्तिनिष्ठ क्षेत्र में परिवर्तन लाने पर बल देता है। यह हृदय और मस्तिष्क में परिवर्तन लाना चाहता है परन्तु यथा पूर्व स्थिति की स्थाई रखना चाहता है। एम.एन. राय के शब्दों में, "गाँधीजी पूँजीवाद की निन्दा तो करते हैं परन्तु उसे समाप्त करने को नहीं कहते" "डिजरैली की भाँति वह उन्हें चीनी चढ़ा कर कड़वी गोली निगलने को कहते हैं।"

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त एक ऐसा "काल्पनिक यन्त्र है जो मानव को स्वार्थपरता और अगाध प्रेरणाओं को ठीक प्रकार से नहीं आँक सका। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धान्त मानव की नैतिक शक्तियों पर जरूरत से ज्यादा विश्वास करता है। गाँधीजी ने सामाजिक संघर्ष की जटिलताओं को बहुत सरल समझा जो वास्तव में सरल नहीं। इसके अतिरिक्त उन्होने समाज को ऐसे नैतिक तत्त्वों से संगठित करने का प्रयास किया जो वर्तमान में विद्यमान नहीं। यही कारण है कि भारत में ही ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को स्वीकार या अस्वीकार करना तो दूर, अभी यह शैक्षणिक रुचि का विषय ही है।

गाँधीजी, एक ओर, राज्य की सत्ता और शक्ति को शंका की दृष्टि से देखते हैं और, दूसरी ओर, वह राज्य के हाथों में वे उद्योग रखना चाहते हैं जो सार्वजनिक कल्याण के लिए अनिवार्य है। इस तरह दो सिद्धान्तों की सेवा करने की इच्छा रखने से वह एक की भी सेवा करने में सफल नहीं हुए, न तो वह अराजकतावादियों की तरह राज्य को अस्वीकार करते हैं और न ही समाजवादियों की तरह (कम से कम संक्रान्ति काल में – यद्यपि समाजवाद भी इस काल की सीमा निर्धारित करने में असमर्थ है) राज्य के यन्त्र को स्वीकार करते हैं।

गाँधीजी ने यन्त्रों की भर्त्सना की है। परन्तु यन्त्रों का अस्वीकार करना "उत्पत्ति के नियम की भर्त्सना है।" यन्त्रों के खराब होने वाली जिन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक समस्याओं का वर्णन गाँधीजी ने किया है, वे वास्तव में यन्त्रों के कारण पैदा नहीं होती बल्कि "यन्त्रों की गलत व्यवस्था", "उत्पादन और वितरण की गलत प्रणालियों" और नगरों की गलत योजनाओं से पैदा होती है। इन बुराइयों को इन व्यवस्थाओं में सुधार करके दूर किया जा सकता है और गाँधीजी ने स्वयं भी तो सार्वजनिक उपयोगिता वाले यन्त्रों को स्वीकार किया है।

4.11 गाँधीजी के राजनीतिक विचार (Political Views of Gandhi Ji) –

गाँधीजी ने अपने आदर्श अहिंसक समाज की रूपरेखा स्पष्ट रूप से तैयार नहीं की थी जिस प्रकार कि प्लेटो, रूसो तथा कार्ल मार्क्स ने अपने आदर्श समाज की रूप रेखा तैयार की थी। जॉन बी. बन्दुराँ के शब्दों में, "वह राजनीतिक कार्यकर्त्ता और व्यावहारिक दार्शनिक थे, वह सिद्धान्त निर्माता

नहीं थे।" गाँधीजी ने स्पष्ट लिखा है कि "मैं पहले से ही यह नहीं बता सकता कि पूर्णतया अहिंसा पर आधारित शासन कैसा होगा।" फिर भी उनकी पुस्तक हिन्द स्वराज्य से और उनके द्वारा समय–समय पर भाषणों, लेखों, वक्तव्यों, भेंटों में व्यक्त किये गये विचारों से उनके आदर्श समाज की कल्पना की जा सकती है।

यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि गाँधीजी का निरन्तर विकसित होने वाला व्यक्तित्व था और उनका तरीका "निगमनात्मक, प्रयोगात्मक, व्यावहारिक और संकलनवादी" था। गाँधीजी के विचारों में आध्यात्म शास्त्र, नैतिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र के विचारों का सम्मिश्रण था। वह इन्हें पृथक् नहीं समझते थे। वह राजनीति का आध्यात्मीकरण चाहते थे।

गाँधीजी अपनी आदर्श शासन अवस्था में राज्य के हिंसक और बल पर आधारित किसी भी स्वरूप को अस्वीकार करते हैं। गाँधीजी अत्यंत शक्तिशाली राज्य को निम्न दो कारणों से अस्वीकार करते हैं। गाँधीजी की मान्यता है कि केन्द्रित रूप में राज्य हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। उनका यह भी मानना है कि– क्योंकि सभी मनुष्य मूल रूप से सामाजिक प्राणी होते हैं और प्रत्येक स्थिति में वे नैतिक व्यवहार नहीं कर पाते हैं और न ही सदैव समाज के प्रति अपने वांछित नैतिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए गाँधीजी ने मर्यादित राज्य की आवश्यकता को स्वीकार किया। गाँधीजी ने ऐसे राज्य का विरोध किया जो विशुद्ध रूप से राजनीति व सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है। यदि राज्य संगठित हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है तो ऐसा राज्य गाँधीजी के लिए राज्य एक अनैतिक संस्था है। उनकी धारणा है कि निरंकुश सत्ता व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समाज के कल्याण के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। गाँधीजी ऑस्टिनवादी निरपेक्ष सम्प्रभुता पर आधारित राज्य के पक्षधर नहीं है। गाँधीजी ने ''सीमित राज्य'' की स्थापना पर बल दिया है। उनकी दृष्टि में राज्य का कार्य केवल विशुद्ध राजनीति करना ही नहीं है अपितु इससे भी कहीं अधिक उच्च, श्रेष्ठ व कल्याणकारी होता है। गाँधीजी राज्य की शक्ति में अत्यधिक अभिवृद्धि के पक्षधर नहीं है। राज्य को व्यक्ति के विकास के लिए कार्य करना चाहिए और व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को अवरूद्ध करने वाले सभी अवरोधों को दूर करने का कार्य करना चाहिए। राज्य शक्ति की बाध्यता न केवल व्यक्ति के कार्य के नैतिक मूल्यों को नष्ट कर देती है बल्कि उसके विकास को भी कुंठित करती है। कार्य तभी तक नैतिक है जब तक स्वैच्छिक है; स्वतन्त्र वातावरण में ही विकास सम्भव है। जब व्यक्ति राज्य रूपी यन्त्र में पुर्जे की तरह कार्य करता है तो उसमें नैतिकता का लोप हो जाता है। कोई भी कार्य तभी नैतिक होता है जब उसे ज्ञान पूर्वक और कर्त्तव्य समझ कर किया जाए। गाँधीजी राज्य शक्ति में वृद्धि को शंका की दृष्टि से देखते हैं।

गाँधीजी राज्य को आम आदमी के दैनिक जीवन से बाहर की संस्था मानते हैं व व्यक्तिगत पहल और स्वैच्छिक नैतिकता को व्यक्ति, समाज व सम्पूर्ण मानवता के लिए श्रेष्ठ मानते हैं। गाँधीजी एक ऐसे विकेन्द्रीकृत आदर्श समाज की स्थापना करने पर बल देते हैं जिसमें व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की सर्वाधिक सम्भावनाएँ निहित हों। गाँधीजी व्यक्ति को राज्य से प्राथमिक मानते हैं और इसी आधार पर एक आदर्श अहिंसक राज्य की स्थापना करना चाहते हैं जिसे बहुमत पर आधारित स्वराज्य की संज्ञा दी जा सकती है। गाँधीजी ने आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदायों से निर्मित शासन की वकालत की है। बहुमत की निरंकुशता व मनमानी उनको अस्वीकार्य है। गाँधीजी के आदर्श राज्य के हर नागरिक को अपनी अन्तरात्मा की आवाज से प्रवृत्त होना चाहिए। गाँधीजी ने अपराध को एक रोग मानते हुए उसके इलाज के लिए नैतिक समझाईश को दण्ड से कहीं अधिक श्रेष्ठ व उपयोगी माना है। गाँधीजी ने ऐसे समाज की परिकल्पना की जो शोषण विहीन हो, जिसमें मजदूरों और पूंजीपतियों व किसानों और जमींदारों के मध्य संघर्ष न हो। गाँधीजी ने व्यक्तियों के व गांवों और शहरों के आपसी संबंधों को निष्क्रिय प्रतिरोध और न्यासिता के सिद्धान्त से हल करने पर बल दिया।

4.12 गाँधीजी की देन (Contributions of Gandhi Ji) –

राजनीति शास्त्र को गाँधीवाद की देन अत्यधिक है। जिसे निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. **नए विचारों का स्वागत** – गाँधी दर्शन में सभी विचार संश्लिष्ट है – अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, धर्म सभी एक दूसरे से सम्बद्ध है और नये विचारों से सामंजस्य का द्वार इसमें सर्वदा खुला है।
2. **राजनीति में नैतिकता आदर्शवाद का समावेश** – गाँधीजी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया और राजनीतिक शब्द में नीति अर्थात् धर्म पर बल दिया।
3. **अहिंसा एक सशक्त उपाय** – यह गाँधीजी की राजनीति शास्त्र की सबसे बड़ी देन है। सत्याग्रह का पूर्ण सिद्धान्त अहिंसा पर आधारित है। जहाँ अब तक विश्व के पास अन्याय को दूर करने का युद्ध के रूप में एक ही विकल्प था वहाँ गाँधीजी ने युद्ध के विकल्प के रूप में सत्याग्रह के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। नैतिक आधारों पर अन्याय का प्रतिरोध करने का व्यक्ति को अधिकार देने का श्रेय गाँधीजी को है।
4. साधन व साध्य की पवित्रता में आस्था।

4.13 गाँधीजी के विचारों का मूल्याँकन (Appreciation of Gandhism) –

गाँधीजी के विचार नैतिक नियमों – सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग इत्यादि – पर आधारित है। इन नियमों को अस्वीकार करते ही गाँधीजी के विचारों की आलोचना की जा सकती है। वास्तव में नियम इतने शाश्वत् है कि इनके अनुकरण करने में ही विश्व में स्थाई शान्ति रह सकती है, तनाव का वातावरण समाप्त हो सकता है और घृणा को प्रेम में परिवर्तित किया जा सकता है। हिंसक उपायों द्वारा – आक्रमण, युद्ध, क्रान्ति, उपद्रव, दमन – कभी भी स्थाई शान्ति

स्थापित नहीं हो सकती। युद्ध ने केवल युद्ध को ही जन्म दिया है, शान्ति को नहीं। यही कारण है कि गाँधीजी के विचारों का समर्थन करने वाले उनके विचारों को न केवल सर्वकालिक बल्कि सर्वदेशीय भी मानते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये विचार क्रान्तिकारी है क्योंकि यह मानव की मूल भावनाओं में ही परिवर्तन लाना चाहते हैं, नैतिक दृष्टि में ये विचार मानव सौहार्द्र के जनक और प्रेरक होने के कारण श्रेष्ठ है, राजनीतिक दृष्टि से ये अधिक सरल, व्यापक और व्यावहारिक होने से सम्भव है, सामाजिक दृष्टि से ये अधिक सरल, व्यापक और व्यावहारिक होने से अधिक मानवीय व सहयोग उत्पन्न करने वाले है; ये समाजवाद के ऐसे विस्तृत निर्दोष रूप है जिनमें व्यक्ति और समाज, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हित सुरक्षित है, ये न केवल पूँजीपतियों की क्रूरता से जनता की सुरक्षा करते हैं बल्कि उन्हें भी आध्यात्मिक और नैतिक बनाने का प्रयास करते हैं। इस तरह कोई ऐसा क्षेत्र नहीं – व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीयता – जहाँ गाँधीजी के विचारों ने सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, बलिदान और त्याग का पाठ नहीं सिखाया। दूसरी ओर, जो लेखक गाँधीजी के विचारों की आलोचना करते हैं वे इन्हें अव्यावहारिक, अवैज्ञानिक, एक पक्षीय, मौलिकता रहित, काल्पनिक, कोरे आदर्शवाद, समाज को पीछे धकेलने वाले पूँजीवाद के समर्थक, वर्ग भेद को स्थाई रखने वाले, इत्यादि बताते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) –

अन्त में यही कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी के विचार पूर्णतः मानवता, जीवन मूल्य और राष्ट्रीय अस्मिता से ओत–प्रोत रहे हैं, जो हर युग और समय के सापेक्ष में अपनी अनुकूलता सिद्ध करते हैं। आज भी विश्व के समस्त शासक शान्ति और अहिंसा में विश्वास रखने वाले गाँधी के विचारों में ही अपनी समस्याओं का मार्ग खोज पाने में सफल हो रहे हैं। यही गाँधीवाद का सार भी है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- **गाँधी सत्य, अहिंसा, प्रेम और मातृभाव** को जीवन मूल्य मानते हैं।
- **गाँधीवाद के प्रमुख स्त्रोत** – धार्मिक ग्रंथ, दर्शन, सुधारवादी आंदोलन व सामाजिक –आर्थिक परिस्थितियाँ।
- **गाँधी के प्रमुख विचार** – राजनीति का आध्यात्मीकरण, साध्य व साधनों की पवित्रता, मानव प्रकृति का विश्लेषण, अहिंसा, सत्याग्रह।
- **सत्याग्रह के स्वरूप** – असहयोग, हिजरत, सविनय अवज्ञा, उपवास, अपरिग्रह।
- **सामाजिक व आर्थिक असमानता दूर करने के गाँधी के उपाय**– अस्तेय व अपरिग्रह, ट्रस्टीशिप, स्वदेशी खादी व चरखा।
- **गाँधी की देन** – नए विचारों का स्वागत, राजनीति में नैतिकता व आदर्शवाद का समावेश, अहिंसा का प्रयोग, साधन व साध्य की पवित्रता पर बल।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. गाँधीजी इनमें से किसे जीवन मूल्य नहीं मानते थे –
   (अ) अहिंसा (ब) सत्य
   (स) प्रेम (द) धन संग्रह ( )
2. गाँधी ने कार्ल मार्क्स के किस विचार का समर्थन किया–
   (अ) वर्ग संघर्ष
   (ब) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
   (स) राज्य विहीन व वर्गविहीन समाज
   (द) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त ( )
3. गाँधी की प्रमुख पुस्तक, जिसमें राजनीतिक दर्शन की झलक मिलती है – का नाम है।
   (अ) हिन्द स्वराज (ब) डिस्कवरी ऑफ इण्डिया
   (स) गीताजंली (द) लेवियाथन ( )
4. हिजरत का तात्पर्य है –
   (अ) हज करना
   (ब) अपना निवास स्थान छोड़, अन्यत्र जाना
   (स) अहिंसात्मक आन्दोलन
   (द) सामाजिक बहिष्कार ( )
5. ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का अर्थ है कि व्यक्ति –
   (अ) सार्वजनिक सम्पति का मालिक है।
   (ब) सार्वजनिक सम्पति का ट्रस्टी है।
   (स) निजी सम्पति नहीं रख सकता है।
   (द) सम्पतियों का त्याग कर दें। ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गाँधीजी के चार प्रमुख जीवन मूल्य क्या हैं?
2. गाँधीवाद क्या है?
3. गाँधीजी पर किन धर्मग्रन्थों का प्रभाव पड़ा था?
4. गाँधीजी की प्रथम प्रयोगशाला कहाँ थी?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गाँधीजी किन समाज–सुधार आन्दोलनों से प्रभावित हुए थे?
2. राजनीति के आध्यात्मिकरण से क्या आशय है?
3. गाँधीजी के सत्याग्रह की सात प्रमुख विशेषताऐं बताइए।
4. उपवास की अवधारणा पर टिप्पणी लिखिए ?
5. राजनीति शास्त्र की गाँधी की प्रमुख देन बताइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. गाँधीवाद के मूल तत्व क्या हैं?क्या यह आज भी सार्थक हैं?सिद्ध कीजिए।
2. गाँधीवाद आधुनिक सभ्यता को कैसे प्रभावित करता है?
3. गाँधीवाद राज्य को कम से कम कार्य क्यों सौंपना चाहता है?
4. '' आर्थिक समता का स्त्रोत ट्रस्टीशिप से गुजरता है। '' सिद्ध कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. स 3. अ 4. ब 5. ब